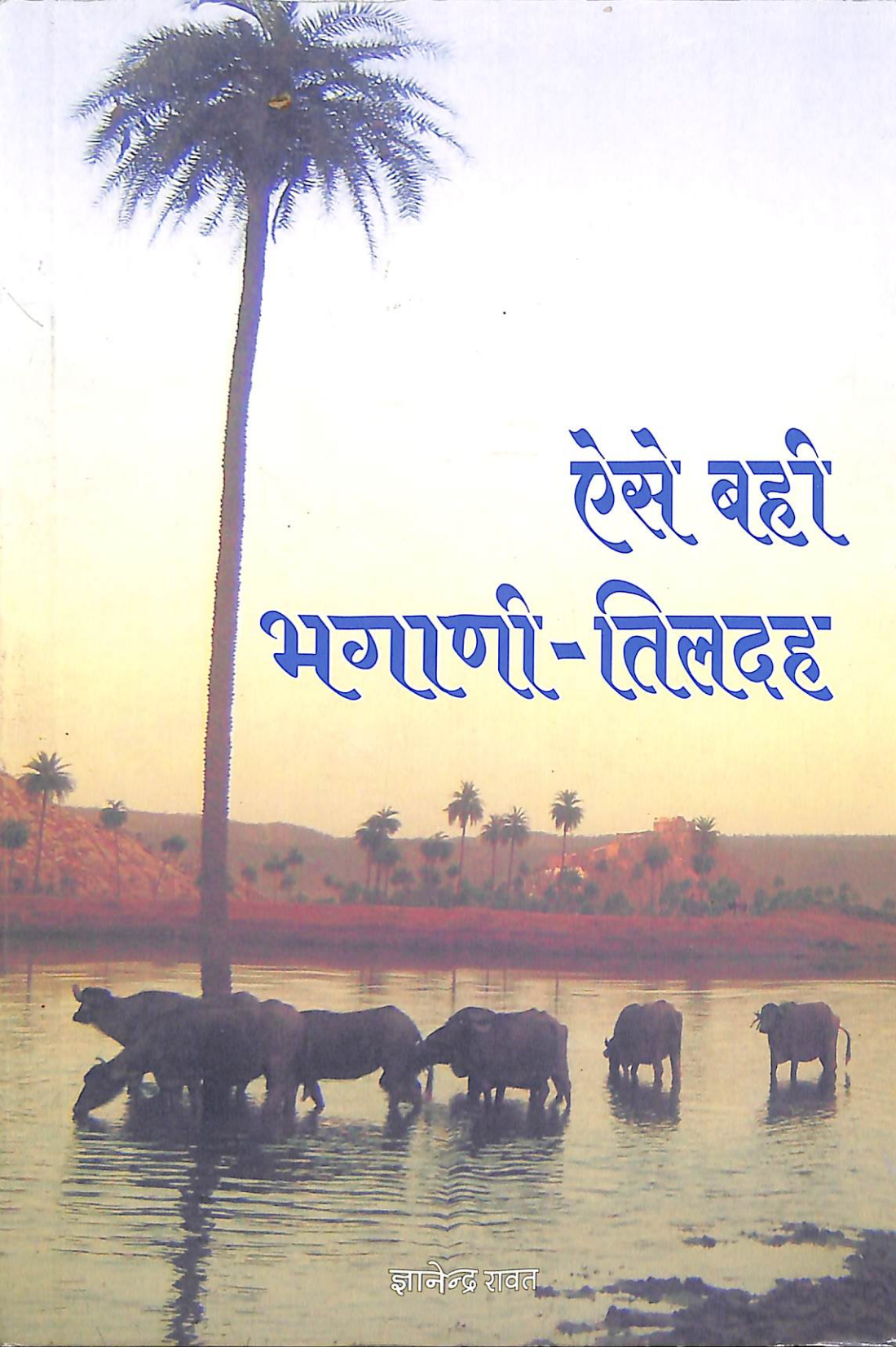

ऐसे बही भगाणी-तिलदह

ज्ञानेन्द्र रावत

भोमिया वाले बांध के बारे में सीडा के प्रतिनिधि कार्ल गुस्ताफ सविन्सन को बताते हुए राजेन्द्र सिंह।

यू.एन. महासचिव के अतिरिक्त महासचिव हाफिज पाशा, एशिया क्षेत्र के यूएन प्रभारी मैक्सिम पोलस और यूएनडीपी के भारतीय अधिकारियों को पानी का पाठ पढ़ाती कजोड़ी माई।

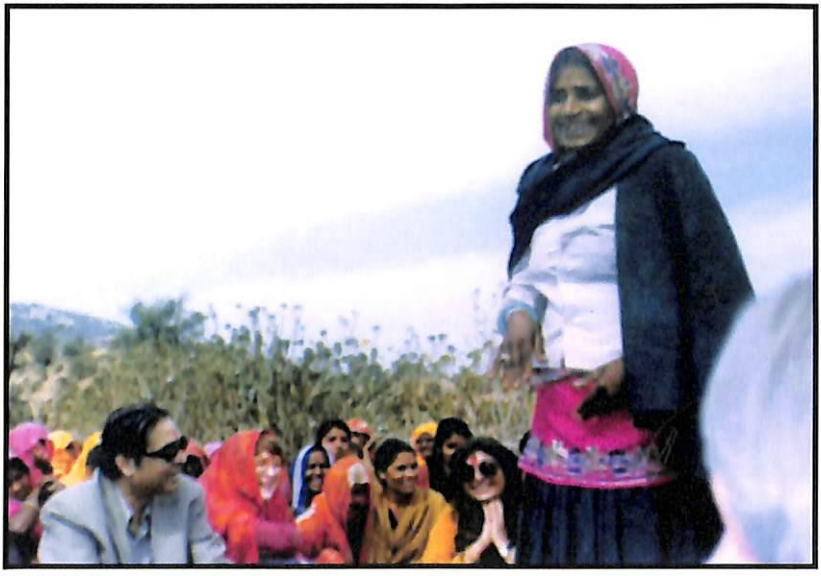

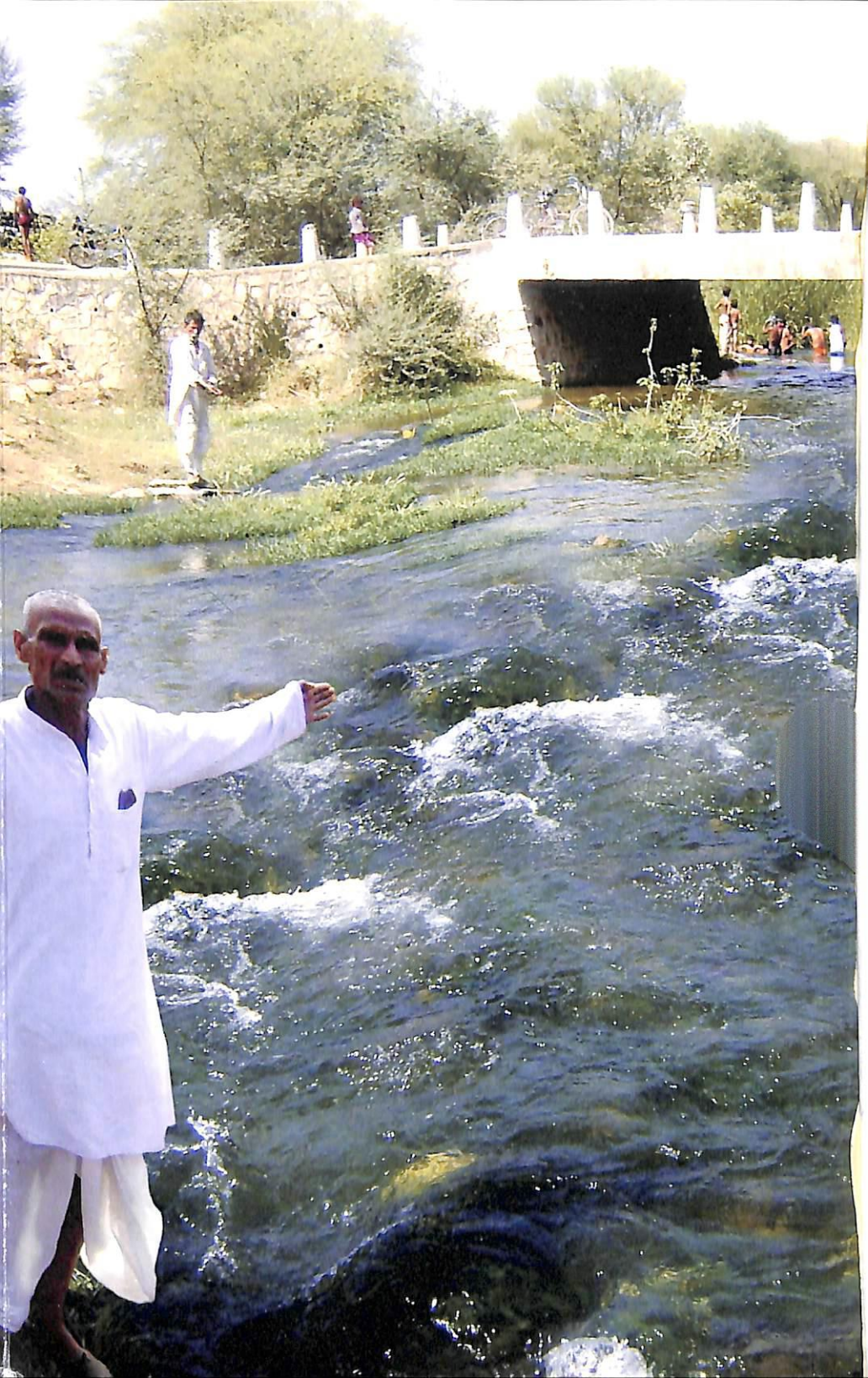

ऐसे बही भगाणी-तिलदह

ज्ञानेन्द्र रावत

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा, किशोरी, थानागाजी, अलवर-301022
(राजस्थान)

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 2009

लेखक : ज्ञानेन्द्र रावत

सहयोग : सत्येन्द्र सिंह, कन्हैया लाल गुर्जर, गोपाल सिंह, छोटेलाल मीणा, जगदीश गुर्जर, देवयानी कुलकर्णी, श्रवण शर्मा, मुरारी लाल जांगिड़, रूपनारायण जोशी, महादेव शर्मा, मुरारी लाल शर्मा

ग्राफिक्स : विनोद कुमार, देवयानी कुलकर्णी

प्रकाशक : तरुण भारत संघ,
भीकमपुरा, किशोरी, थानागाजी,
अलवर-301022, (राजस्थान)
दूरभाष : 01465-225043

वितरक : जल बिरादरी
34/46, किरण पथ, मानसरोवर,
जयपुर-302020
दूरभाष : 0141-2393178

Email : watermantbs@yahoo.com
jalpurushtbs@gmail.com

मूल्य : 100.00 रुपये

रूपांकन एवं मुद्रण : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

समर्पण

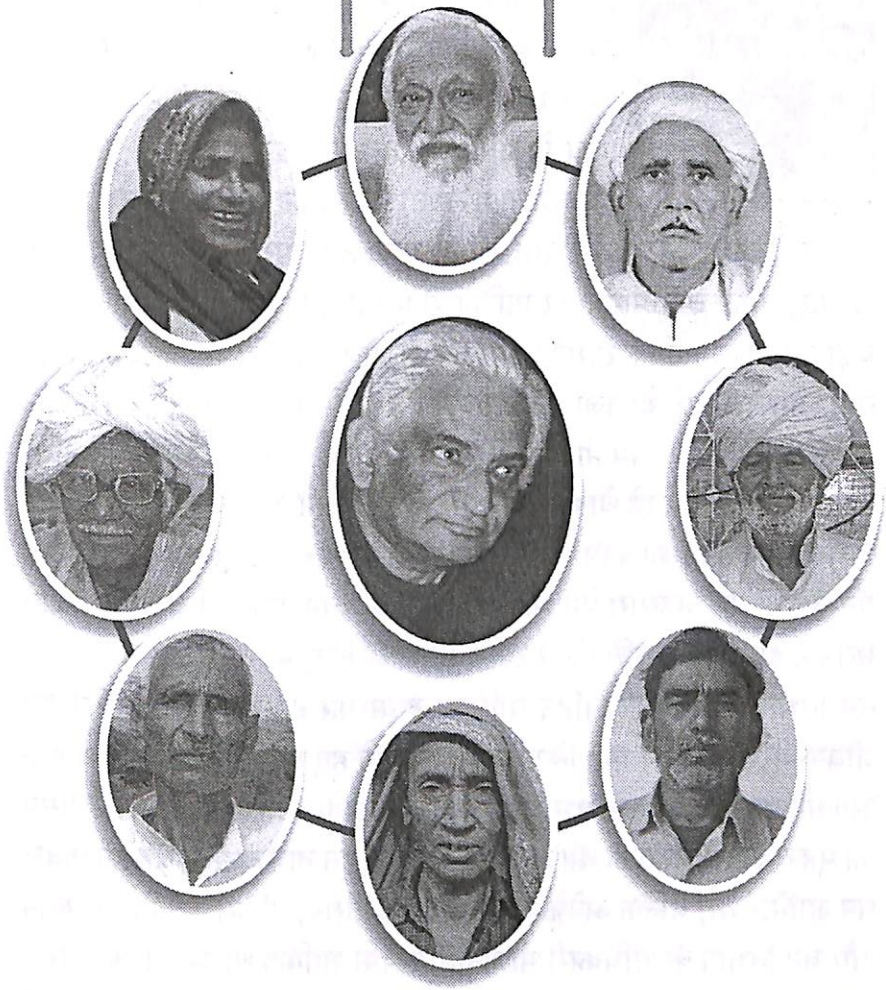

मां गंगा की रक्षा हेतु आत्मोत्सर्ग के लिए तत्पर रहने वाले
परमादरणीय डा. गुरुदास अग्रवाल,
सरिस्का में खानों के विरोध में हुए संघर्ष को
उच्चतम न्यायालय से विजयश्री दिलाने में प्रमुख भूमिका निबाहने वाले
प्रख्यात कानूनविद् राजीव धवन,
इस संघर्ष में प्रमुख योगदान देने वाले कजोड़ी माई, छोटेलाल मीणा, बिरदू बाबा,
गणेश गुर्जर, रूपनारायण जोशी, लक्ष्मा देवी व महेश शर्मा को समर्पित

भूमिका

भागाणी नदी की कहानी मुख्यतः जंगल, जंगली जानवर, पहाड़ और इनकी कंदराओं में रहने वाली जनजाति मीणा व गूजरों के जीवन को नष्ट करने वाले खनन उद्योगों से टकराने की कहानी है। जब मैं इस क्षेत्र में आया था, तब मुझे खनन, विकास का बहुत अच्छा काम लगता था। लेकिन 2-3 सालों में ही खनन से हो रहे विनाश का चक्र मेरी समझ में आ गया। उस समय कुएं सूख रहे थे। लोग लाचार, बेकार व बीमार होकर मालिक से मजदूर बन रहे थे। खान मालिकों का बड़ा आतंक था। उनके सामने किसी की भी बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। यहां लोग उजड़ रहे थे। उजाड़ को रोकने की मुझमें भी हिम्मत नहीं थी। लेकिन जंगल संरक्षण यज्ञ एवम् नीलकंठेश्वर में हुए जंगल बचाने के प्रशिक्षण शिविर लोगों को तैयार कर रहे थे। मेरे मन में भी जंगल बचाने और जंगली जानवरों को अभय प्रदान करने का काम खनन रोकने से ही संभव होगा, ऐसा अहसास हुआ। मैंने अपना यह अहसास प्रेम भाई और राजीव धवन दोनों को बताया। राजीव धवन ने इस काम में रुचि लेकर खनन रोकने के लिए भारत सरकार व राज्य के वन विभाग के विरुद्ध जनहित याचिका दायर कर दी। खान मालिकों ने इसे जीवन-मरण का प्रश्न बना लिया था। बौखलाये हुए खान मालिक हर हथकंडा अपनाने पर उतारू थे। यह प्रभावशाली लॉबी पैसे के दम पर सत्ता और प्रशासन का मुंह बंद करने पर तुली थी। खान मालिकों की इस ताकतवर लॉबी में न केवल धन शामिल था, बल्कि अनेक वरिष्ठ नेता, प्रशासन, पुलिस अधिकारी, खान और वन विभाग के अधिकारी भी बेनामी रूप से शामिल थे। आखिरकार तरुण भारत संघ की इस जनहित याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने अरावली क्षेत्र में खनन पर रोक लगा दी।

उच्चतम न्यायालय से मिली जीत ने अधिकारियों, व्यापारियों, खान मालिकों व नेताओं, सबको बौखला दिया। 26 नवम्बर 1991 को धौली खान पर और कई जगह तभासं कार्यकर्ताओं पर हमले किये गये। वैसे तो छुट-पुट हमले नित्य

होते रहते थे, लेकिन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश व सरकार के विभिन्न अधिकारियों के सामने मुझ पर हुआ हमला मेरी जरूरत के अहसास को दबाने का था। लेकिन मुझे अपनी जीत का आभास होने लगा था। इसलिए एक ओर खानों के खिलाफ मैं उच्चतम न्यायालय की शरण में था और दूसरी तरफ रचना का काम करने के लिए जोहड़ बनाने, जल, जंगल संरक्षण समितियां बनाकर अपने समाज की शरण में भी था। मुझे अदालत की लड़ाई में राजीव धवन जैसा एडवोकेट और समाज के काम में बरदू मीणा, जगदीश पढ्या, कजोड़ी मीणा, लक्ष्मा, पांचू गुर्जर व गणेश गुर्जर जैसे लोग मिलते गये। इन्हीं की कोशिशों से पहले तो अरावली पर्वत श्रृंखलाओं का खनन रुका। इनके जबाब में जोहड़ बने और इन जोहड़ों ने मरी हुई सूखी भगाणी नदी को शुद्ध, सदानीरा बनाकर जन्म दिया।

भगाणी नदी का नाम लेते ही मांडलवास गांव, बरदू मीणा, जगदीश पढ्या और लछमा, कजौड़ी, पांचू सबसे पहले मेरे दिलो-दिमाग पर छा जाते हैं। सरल स्वभाव के ये सब लोग अपने सुख-दुख को भूलकर साझे सुख-दुख में हाथ बंटाने घर से निकल पड़ते हैं। भगाणी को देखकर सबसे पहले कजोड़ी की बहादुरी याद आती है। जल के काम के लिए मेरे साथ देश भर की यात्रा, महिलाओं को जल सहेजने, जल का अनुशासित होकर उपयोग करने, जल-अधिकार हेतु लड़ने के लिए तैयारी करने और जल साक्षरता यात्रा में महीनों-महीनों घर से बाहर रह कर समाज सेवा का बड़ा चित्र मेरी आंखों के सामने सहज ही उतर आता है। इसी गांव का नानछा सरपंच भी याद आता है। वह राजौर पंचायत का सरपंच रहते हुए हमसे लड़ता था लेकिन सरपंच नहीं रहने के बाद अपनी गलती की माफी मांग कर हमारे साथ पानी के काम में जुड़ गया था। मथुरावट के बलाइयों ने मिलकर बहुत सेवा भाव से जोहड़ बनाने, जंगल बचाने का काम किया। रमसी बलाई तो रात-दिन इस काम में लगे रहते थे।

भगाणी नदी ने ही मुझे भगाया। भीकमपुरा से मांडलवास सात किलोमीटर पहाड़ पर चढ़-उतरकर हर सप्ताह जाता था। यह नदी नीलकंठेश्वर के जंगल से शुरू होती है। यहां सबसे ऊपर का पहला गांव गढ़ है। जहां नौवीं शताब्दी का प्राचीन

नीलकंठ मंदिर, जलसंरक्षण परंपरा के प्रतीक बावड़ी-तालाब आज भी मौजूद हैं। मुझे याद है, इस गांव के दो नौजवान बनवारी व महेश जब मैं पहली बार इस गांव में गया, तब तो नहीं मिले थे, लेकिन जब यहां पानी का काम हो गया, तब वह मुझसे मिलने आए। यह गांव वैसे तो महाभारत के लाक्षागृह, कन्नौज के गूजर प्रतिहार राजाओं की उथल-पुथल की कहानियां सुनाता है, परंतु अब यहां दस जोगियों और पन्द्रह मीणाओं, एक नाई और दो ब्राह्मणों के परिवार ही रहते हैं। बनवारी लाल सैन वहां के नाई परिवार का सबसे बड़ा बेटा और महेश शर्मा ब्राह्मण परिवार का बेटा है। ये दोनों ही 1988 से रात-दिन मेरे साथ 1993 तक रहने लगे थे। इन्होंने जल-जंगल-जमीन बचाने और बच्चों को पढ़ाने का काम किया था।

गढ़ गांव भगाणी नदी की चोटी का गांव था। इसके आगे गढ़ का ग्वाड़ा, जहां पुरानी जल संरचनाओं के निशान बचे थे, उन्हीं को ठीक करने का यहां के मीणाओं ने संकल्प लिया और वे जल बचाने के काम में जुट गए। यहां रूसी राणी का महल भी है। इसमें वर्षा जल सहेजने का अच्छा प्रबन्ध था। यहां कांकवाड़ी किले में हजारों जवानों के लिए पीने का पानी सहेजने की व्यवस्था थी। कावरी गेट और असावरी गेट के बीच यह एक राज्य था। यहां अलग-अलग काल में अलग-अलग धर्मों का प्रभाव रहा है।

जब मैं इस गांव में पहली बार गया, तब राजौर पंचायत का सरपंच मेरे बुलाने पर भी नहीं आया। पर बरदू, जगदीश, हरला, रामपाल, काणू, पांचू सब मुझसे मिलने आये और इन्होंने मिलकर पूरी छींड़ को पानीदार बनाने का तय कर लिया। राम प्रताप गूजर, राधा किशन, रतना, रमेश और प्रभात ने भी अपने मन में अपनी-अपनी जगह पानीदार बनाने का अहसास पैदा करके भगाणी को सदानीरा बनाने का निश्चय कर लिया था। इनमें जगे इस अहसास को देखकर दबकन, सिटावट, तेजावाला, तिलवाड़, तिलवाड़ी, ककराली, रामपुरा, बरवा डूंगरी, घाटड़ा, बेरली, बलदेवगढ़, पालपुर, कालवाड़, खोह, गोवर्धनपुरा, मल्लाणा, जयसिंहपुरा आदि गाँवों के लोगों में भी अपनी खेती और पानी को बचाने के लिए खान मालिकों से टकराने की हिम्मत पैदा कर दी। इनके गांव के

जंगल में चल रही खदानों को बन्द कराने के काम में लगे पांचू राम मीणा, महेश शर्मा, जनसी, छोटेलाल मीणा, जगदीश, श्रवण, भोला मीणा, गोपी कुम्हार गणेश गुर्जर, रूपनारायण जोशी और बोदन वैद्य जैसे जुझारू व विद्वान जनों ने गांव के बरबाद होते जंगल को बचाने के लिए मोर्चा संभाल लिया। ये एक तरफ खनन के विरुद्ध खड़े हुए और दूसरी तरफ अपने हाथों से पानी बचाने के काम में जुट गए। पालपुर के रूपनारायण जोशी और तिलवाड़ के गोपी कुम्हार तो आज भी भगाणी नदी के लिए समर्पित संत जैसे बन गए हैं। जोशी जी अपनी दुकान चलाते हुए, खेती का काम करते हुए तिलदह को पानीदार और सुंदर बनाने में जुटे हुए हैं। गोपी कुम्हार संन्यासी बनकर तिलदह की साफ-सफाई का खयाल रख रहे हैं। इन दिनों मल्लाणा के जयराम मीणा दिल्ली में रहते हुए भी अपने गांव के जंगल और जमीन को बचाने हेतु सक्रिय हैं।

भगाणी नदी में बंजारों ने अद्‌भुत काम किया है, लेकिन जमीनों के दाम बढ़ने के बाद खान मालिकों ने सरिस्का की वन भूमि को पटवारी और तहसीलदारों के साथ मिलकर 'मिनलैंड' के नाम पर घोषित करवा कर बड़े फार्म बना लिए हैं। 1988 से लेकर 1995 तक सरिस्का के चारों तरफ बाहर से आए घुमन्तू लोगों ने 19 जगहों पर इन 'मिनलैंड' पर कब्जे किए थे। इन बंजारों को थोड़े-बहुत पैसे देकर खान मालिकों ने वह जमीन खरीद ली और वहां बड़े-बड़े फार्म हाउस बना लिए हैं। अब तो सरिस्का में बड़े-बड़े लोगों ने कब्जे करने शुरू कर दिए हैं।

खदानें तो लोगों ने बंद करा दी थीं। मुझे याद है अक्टूबर 1991 में इन्हीं खान मालिकों ने हम पर जानलेवा हमले किए और बलात्कार से लेकर बाघ के शिकार और न जाने क्या-क्या ऐसे अनगिनत मुकदमे हम पर दर्ज कराये थे। पर 'जाको राखे साइयां मार सकै न कोय' वाली कहावत सही साबित हुई और किसी का कुछ नहीं बिगड़ा। मुझे इन मुकदमों से बचने के लिए कभी भयभीत नहीं होना पड़ा। जब भी मेरे खिलाफ कोई सम्मन आता था तो मैं उसे स्वीकार कर, उसे लेकर उसी के हाथ अपना जवाब लिखकर भेज देता था।

उच्चतम न्यायालय में उस जमाने में एक बहुत ही ईमानदार मुख्य न्यायाधीश थे, उन्हें इस बारे में इन सारे झूठे मुकदमों की सूची और कागजात के साथ जनहित

याचिका दायर करके मैंने बता दिया था। उच्चतम न्यायालय ने सरकार को पाबन्द किया और इन झूठे आरोपों के कारण पूछे। उसके बाद से तो फिर आरोपों की झड़ी लगनी बन्द हो गयी। भगाणी ने मुझे भगाया भी और भगुवा भी बनाया। मैं पूरे धीरज के साथ यह सब देखता रहता था। मुझे कभी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की प्रेरणा नहीं हुई और आरोपों के जवाब में मैंने कभी अपनी श्रम शक्ति, समय और साधन नहीं लगाए। परिणाम यह हुआ कि हमारा रचनात्मक काम आगे ही बढ़ता गया और अन्याय के खिलाफ लड़ने की ताकत भी हमारे अन्दर पैदा हुई।

इसी तरह से एक तरफ खनन करने वाले शांत हुए और दूसरी तरफ सत्ताधीश अपनी गलतियां मानकर हमारे पास आने लगे। मैं जानता हूं कि जब खनन बन्द हुआ था, तब खान मालिकों ने हमारे खिलाफ बौखला कर अलवर शहर में रैलियां निकाली थीं। बाद में हमारे खिलाफ रैलियां निकालने वाले लोग खुद हमारे पास आए और अपनी गलतियों के लिए उन्होंने क्षमा भी मांगी। यह सब इसलिए संभव हुआ क्योंकि हम साझा भविष्य सुधारने हेतु खनन के द्वारा नष्ट हो रही अरावली पर्वत माला को बचाने के लिए काम कर रहे थे। जल, जंगल, जमीन, जानवर बचाने का रचनात्मक काम कर रहे थे और इसी के साथ लड़ रहे थे। हमने राजस्थान में परम्परागत वन-प्रबन्धन को समझने-समझाने का काम किया और अरावली पर्वत बचाने का राज और समाज से संकल्प करवाया। हमने पूरी अरावली पर्वत की हिम्मतनगर (गुजरात) से लेकर दिल्ली तक 14 दलों में यात्राएं कीं। उच्चतम न्यायालय ने हमारे फैसले के साथ-साथ पूरी अरावली को पर्यावरणीय संवेदनशील क्षेत्र घोषित कर अरावली में खनन बंद कराया।

जब सरिस्का क्षेत्र में खदानें चल रही थीं, तब भगाणी नदी बिल्कुल सूख गयी थी। खदानें बंद होने से पानी का स्तर ऊपर आने लगा और भगाणी-तिलदह बहने लगी। इस नदी के बहते ही उजड़े हुए तिलदह के मंदिर पुनः जाग्रत हो उठे। आज कल लोग भगाणी-तिलदह नदी में पुनः स्नान करके, उसी जल से शिवलिंग को भी स्नान कराते हैं। अब तिलदह, भगाणी नदी का ही दूसरा नाम हो गया है।

इस नदी को जीवन देने वाले यदि मैं कुछ नाम लूं तो मांडलवास का भोमिया वाला जोहड़, करॉट की पीलापानी की जोहड़ी, तिलदह के दो एनीकट प्रमुख हैं। यूं तो 120 जोहड़-बांध-एनीकट-चैकडैम तरुण भारत संघ ने बनवाये हैं, लेकिन इनके अलावा तरुण भारत संघ के कामों से प्रेरणा लेकर समाज ने भी बहुत से स्वयं बनाये हैं। इस नदी को सदानीरा बनाये रखने में सिंचाई विभाग के पुराने जमाने के बने दो बांध मंगलांसर व मानसरोवर का भी बड़ा योगदान है।

मेरा मानना है कि इसमें सबसे बड़ा योगदान पेड़ों का है। इस क्षेत्र में जब तक जंगल और पेड़ बने रहेंगे, तब तक हरियाली बनी रहेगी और भगाणी-तिलदह नदी शुद्ध सदानीरा रहेगी। भगाणी-तिलदह नदी के पुनर्जीवन में खानों से टकराते हुए समाज और पानी के प्यार में बहता हुआ इन्सान दोनों की ही भूमिका मुख्य रही है। आज हमें जरूरत है कि हम भगाणी-तिलदह को पानीदार बनाये रखने हेतु सरिस्का के बाघ, जंगलवासी, जंगली जानवर, जंगल और जल के रिश्ते को गहरा और मजबूत बनाकर रखें। भगाणी-तिलदह नदी के जीवन को बनाने और उसे चलाये रखने हेतु बाघ की खातिर भगाणी गांव के लोग अपना गांव छोड़कर चले गये और बर्ड़ोद में जाकर बस गये। इसी प्रकार कांकवाड़ी, करॉट के लोग भी बाघ और नदी के जीवन के लिए अपना गांव छोड़ कर देश की राजधानी के निकट जाकर बर्ड़ोद में बस रहे हैं।

भगाणी की कहानी बाघ, वनवासी, जल, जंगल, जानवर के जोग की कहानी है। हमारा विकास इस सब जोग को तोड़कर सबसे पहले विस्थापित करता है, फिर विकृति पैदा करता है और अन्त में विनाश पर जाकर रुकता है। सरिस्का के जंगल में यही हो रहा था। यहां के खान मालिक विकास का नारा देकर पहले बाघ को विस्थापित करने के लिए जंगल के रक्षक वन एवम् पर्यावरण मंत्री और जंगल के भक्षक खनन मंत्री, दोनों ही तरह के काम एक व्यक्ति के हाथ में दे देते हैं; जो जंगल का भक्षण करने वाले खनन उद्यमियों को संरक्षण देते हैं और ये खनन उद्यमी बाघ के शिकारियों से मिल कर तथा जंगलात के अधिकारियों से सांठगांठ करके बाघ का जंगल से सफाया कर देते हैं। इसके बाद जंगल की भूमि को अपलिखित कराने हेतु भारत सरकार से आवेदन करते हैं।

इस काल में सरकार को विकास के नाम पर सरिस्का के जंगल का विनाश ही अच्छा लगता है। लेकिन फिर एक दूसरी सरकार आती है और जंगल का व पानी का संरक्षण करने हेतु अपनी प्रतिबद्धता दिखलाती है। इसलिए सरकारों के आने-जाने से पानी और प्रकृति के प्रबन्धन पर हुआ असर सरिस्का में दिखता है। विकास की दुहाई देने वाली सरकार केवल पानी और प्रकृति को लूटने वालों को प्रोत्साहन देने के लिए अपने मंत्रिमंडल तक में बदलाव कर देती है और मंत्रिमंडल की परम्पराओं को तोड़कर आगे आ जाती है। यह बात हर्षित करती है कि हमारा समाज प्रकृति के विनाश करने वाले ऐसे लोगों को सत्ता से बाहर कर देता है। राजस्थान विधान सभा का 2008 का चुनाव इसका जीता जागता सबूत है।

आज भी भारत का समाज प्रकृति और पानी के संरक्षण को प्यार करता है। लेकिन सरकारें संवेदनहीन होकर विकास के नाम पर विनाश करती हैं। इसी का परिणाम था भगाणी नदी का मरना। अब भगाणी-तिलदह नदी पुनः बहने लगी है। यह कार्य समाज के साझे श्रम से सम्भव हुआ है। इस साझे श्रम को जगाने में कजोड़ी माई, नान्छा मीणा पूर्व सरपंच व बाला सहाय राजौर, पांचू मीणा पूर्व सरपंच मल्लाणा, छोटेलाल मीणा तिलवाड़ी, रामू गुर्जर, राधा किशन व लालू गुर्जर कराँट, भगवान सहाय, कालूबाबा, सूसाराम ब्याड्वाल व रामप्रसाद मीणा मांडलवास, रघुनाथ मीणा मथुरावट, भौंरेलाल कुम्हार कांसला, जगदीश तिवाड़ी रामपुरा, भैंरु सहाय, मेघाराम मीणा गढ़, रामू गुर्जर दबकन, राम सहाय शर्मा और अर्जुन मीणा पालपुर प्रमुख हैं। इन्होंने तरुण भारत संघ के शुरुआती दौर में हमारे साथ जोहड़ों-बांधों के निर्माण में जो सहयोग दिया, उन्हें और उनके काम को कभी भुलाया नहीं जा सकता। वे आज हमारे बीच तो नहीं हैं, लेकिन इनकी कमी मेरे व मेरे साथियों को हमेशा खलती रहेगी।

इसके अलावा बिरदू बाबा, जगदीश पढ्या, लच्छमादेवी, बिरजी चंद, भागल्या, भजनलाल मीणा, श्रीराम मीणा, फूल चंद मीणा, तीतर राम मीणा, छाजूराम, मूलचंद व श्रवण मीणा मांडलवास, मूलचंद मीणा, कजोड़ मीणा,

रमेश शर्मा, कालू राम, छोटे लाल, जगदीश पटेल, छाजूराम व जगदीश मीणा राजौर, भौंरे लाल व मल्लाराम मीणा कांसला, राधेश्याम, भगवान सहाय, बोदन लाल व रमशी बलाई मथुरावट, राम प्रसाद, बद्री प्रसाद गुर्जर कालाखेत, भूराराम व धनाराम गुर्जर मान्याला,पांचू राम, बोबड़ गुर्जर व कजोड़ मीणा काण्यास, बोदन लाल गुर्जर खान्याली, महादेव शर्मा हरनेर, राम प्रताप गुर्जर कांकवाड़ी, रतना, रमेश, माधौ बाबा, लक्ष्मण, झब्बूराम व किशन गुर्जर, करांट, बनवारी, गुलजारी योगी व रामपाल मीणा गढ़, माधो, बोइ्या राम, बुद्धालाल, प्रभात गुर्जर व इन्द्र गुर्जर पीलापानी, गणपत राम, बाबूलाल गुर्जर, बाबू सिंह लरूका, रामजीलाल, लल्लूराम व रामजीलाल गुर्जर दबकन, बोदन वैद, श्रवण लाल, बाबूलाल, जयराम व जगदीश मीणा मल्लाणा, गोपी कुम्हार तिलवाड़, महेश शर्मा, राधा किशन व गणेश गुर्जर गोवर्धनपुरा, जन्सी मीणा, जगदीश, रूपनारायण जोशी पालपुर, गोवर्धन गुर्जर ककराली, सीताराम तिवाड़ी व प्रहलाद शर्मा रामपुरा, द्वारका प्रसाद व राजू शर्मा खोह, रामपाल सैनी घाटड़ा, दीन दयाल शर्मा व डा. गजराज सिंह जगन्नाथ पुरा, रामस्वरूप गुर्जर किलानीचा व धींगाराम गुर्जर कांकवाड़ी आदि सभी का बीते वर्षों में जंगल बचाने, इस हेतु चेतना जगाने की दिशा में पदयात्रा करने, खनन के खिलाफ संघर्ष करने, सत्याग्रह करने व जल संरक्षण के काम यथा जोहड़-बांध बनाने आदि में मुझे व तरुण भारत संघ के साथियों को जो सहयोग, प्रेम व साथ मिला और इन सब ने तरुण भारत संघ के साथियों को आगे बढ़ाने में जो मदद की है, उसी के फलस्वरूप भगाणी-तिलदह सरस कर अब बहने लगी है। इस हेतु मैं और तरुण भारत संघ इन सभी के सदैव आभारी रहेंगे।

इन्हीं सब लोगों के अनथक सहयोग के बलबूते मुझे समाज को पानी के कामों के साथ जोड़ने, जल को जीवन मानकर समझने, उसे सहेजने, समझाने और उस हेतु सत्याग्रह तक करने की न केवल शक्ति मिली बल्कि उस लड़ाई में मुझे सफलता भी मिली। मुझे विश्वास है कि भगाणी-तिलदह के पुनर्जीवन की इस कहानी से प्रेरणा लेकर हम सभी देश के समाज के मानस को नदियों से जोड़ने की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

'ऐसे बही भगाणी-तिलदह' नामक पुस्तक लिखने में हमारे वरिष्ठ साथी ज्ञानेन्द्र रावत ने काफी श्रम किया है। इस हेतु में उनका स्वागत करता हूं और आभार व्यक्त करता हूं। इस कार्य में उन्हें छोटेलाल मीणा, कन्हैया लाल गुर्जर, गोपाल सिंह, जगदीश गुर्जर, देवयानी कुलकर्णी, श्रवण शर्मा, मुरारी लाल जांगिड़, रूपनारायण जोशी, महादेव शर्मा और मुरारी लाल शर्मा ने बहुत मदद की है। आशा है यह पुस्तक भगाणी-तिलदह के पुनर्जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी देने में सहायक सिद्ध होगी।

-राजेन्द्र सिंह
अध्यक्ष, तरुण भारत संघ

मेरी दृष्टि में

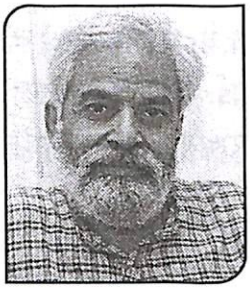

'सरसा के पुनर्जीवन की गाथा' नामक पिछली पुस्तक में मैंने लिखा था कि तरुण भारत संघ ने अपने प्रमुख श्री राजेन्द्र सिंह जी के अथक प्रयासों से पानी की समस्या से जूझते राजस्थान में सात नदियों को पुनर्जीवन देने का काम किया है। सरसा उसकी एक कड़ी अवश्य है। उसकी दूसरी कड़ी का नाम है भगाणी-तिलदह, जिसके पुनर्जीवन की कहानी अब यहां हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। दरअसल नदियों को पुनर्जीवन देने का काम उतना आसान नहीं होता जितना हम समझते हैं। हम अपने स्वार्थ की खातिर उसे मारने-सुखाने का काम तो बड़ी तेजी से कर गुजरते हैं, लेकिन जब बात उनके पुनर्जीवन की आती है तो हमें दिन में भी चांद-तारे दिखाई देने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में या तो हम उसके सवाल को हमेशा-हमेशा के लिए भूल ही जाते हैं या फिर जैसा कि अक्सर होता है, हम अपने दायित्व से विमुख होकर उसका ठीकरा किसी और के माथे फोड़ने को उतावले रहते हैं। ऐसे काम करने का जोखिम हर कोई नहीं उठाता। वही उठाता है जिसमें देश व समाज हित के लिए कुछ अलग कर गुजरने का जज्बा और हिम्मत होती है। ऐसे विरले ही होते हैं जिनके मन में बदलाव की चाहत होती है। राजस्थान के अलवर जिले में ऐसा ही संभव कर दिखाया भाई श्री राजेन्द्र सिंह जी ने जिन्हें उनके जानने वाले प्यार, दुलार, श्रद्धा और सम्मान के साथ 'भाई साहब' कहते हैं और जिन्होंने हजारों जोहड़, छोटे-छोटे बांध व एनीकट बनाकर आज न केवल राजस्थान के लोगों की तकदीर बदलने का काम किया है, बल्कि ग्रामीण संगठन शक्ति को जाग्रत कर भारत के परंपरागत जल-प्रबन्धन के जरिये सामुदायिक संपत्तियों के संरक्षण व प्रबन्धन की नई दृष्टि विकसित कर एक महती कार्य किया है।

जैसा कि अक्सर वह कहते हैं कि बांध, जोहड़ बनाने और जंगल बचाने व लगाने के हमारे कार्यक्रम ग्रामीण व्यवस्था को स्वावलम्बी बनाने के लिए हैं, सही

लगता है क्योंकि इसके माध्यम से उन्होंने वह साबित भी कर दिखाया है। नदियों का पुनर्जीवन और उसके चलते हजारों हेक्टेयर खेती और जंगलों की हरियाली के साथ-साथ यहां रहने-बसने वाले ग्रामीणों के चेहरों की लाली व उनकी खुशहाली इसका ज्वलंत प्रमाण है। इस हेतु वह बधाई के पात्र हैं। लेकिन यह भी सच है कि यह सब समाज के सहयोग के बिना असंभव था। इसमें उस समाज की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता।

यहां एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अपने उद्देश्य और लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उनके समक्ष सरकार, प्रशासन, उद्योगपति और नेताओं के गठजोड़ ने बाधाएं भी कम नहीं खड़ी कीं। कभी उन पर अनर्गल आरोप लगाए गए, उनकी प्रतिष्ठा को जन-मानस की दृष्टि में धूल-धूसरित करने के प्रयास किए गए, झूठे मुकदमे दर्ज कराये गये और तो और प्रशासन -पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियों की मौजूदगी में उन पर जान लेवा हमला भी करवाया गया। लेकिन दृढ़ निश्चयी राजेन्द्र सिंह उनके आगे न झुका, न अपने कर्तव्य पथ से डिगा और न विचलित ही हुआ। अंततोगत्वा जनता की ताकत के आगे विरोधियों को झुकना पड़ा और सत्य की जीत हुई। असल में यह जीत ईमानदारी, मानवता, समाज हित के लिए सर्वस्व समर्पित और आत्मोत्सर्ग किए जाने वाले भाव और आत्मबल की जीत थी जिसके बाद तरुण भारत संघ ने जन-सहयोग के बलबूते जोहड़-बांध बनाने का काम द्रुतगति से कर सूखी-मरी भगाणी-तिलदह को पुनः बहाकर एक मिसाल कायम की।

यह पुस्तक जो भगाणी-तिलदह के पुनर्जीवन की कहानी है, में भगाणी-तिलदह के ऐतिहासिक महत्व, अरावली की उपत्यकाओं में परंपरागत वन-प्रबंध, यहां के आदिवासी समूह के विलुप्त होने के खतरों, भगाणी के यथार्थ, उसके पुनर्जीवन में कुछ प्रमुख गांवों के प्रयासों, उनकी भूमिका, नदी के सदानीरा होने से हुए क्षेत्र के विकास की कहानी और भगाणी के इतिहास से जुड़े राजौर के राजू गूजर के पुत्र कारसदेव, जिन्हें इस समूचे अंचल में गोधन का रक्षक माना जाता है, की गाथा के साथ उपरोक्त तथ्यों को सिलसिलेवार देने का

प्रयास किया है। संघ के इस भगीरथ प्रयास से इस अंचल के बदले चेहरे की असलियत जन-मानस के सामने लायी जा सके, इस पुस्तक का यही पाथेय है। मेरे इस प्रयास को उस समय और बल मिला जब श्री राजेन्द्र सिंह जी ने मुझे इस कार्य में हर संभव सहयोग देने का आश्वासन दिया। यह भी सच है कि उन्होंने उसे पूरा भी कर दिखाया।

पुस्तक की सामग्री जुटाने में सर्वश्री सत्येन्द्र सिंह, कन्हैया लाल गुर्जर, गोपाल सिंह, छोटेलाल मीणा, जगदीश गुर्जर, मुरारी लाल जांगिड़, रूपनारायण जोशी, श्रवण शर्मा, महादेव शर्मा व मुरारी लाल शर्मा आदि का विशेष आभारी हूं, जिन्होंने इस काम में प्रभावी भूमिका निभायी और मुझे यथासंभव सहयोग प्रदान किया। सुश्री देवयानी कुलकर्णी व श्री विनोद कुमार इसलिए साधुवाद के पात्र हैं कि उन्होंने रात-दिन एक कर टंकण कार्य पूर्ण किया। श्री छोटे लाल मीणा ने तो मुझे लेखन कार्य में हर संभव सहयोग दिया है। इस हेतु वह साधुवाद के पात्र हैं। श्री गोपाल सिंह व सुश्री देवयानी कुलकर्णी का इसलिए भी आभारी हूं कि उन्होंने भगाणी-तिलदह नदी के जलागम क्षेत्र में संघ द्वारा निर्मित जल संरचनाओं की सूची व उनके मानचित्र बनाने में न केवल अनथक श्रम किया बल्कि यथा समय उसे मुझे उपलब्ध भी करा दिया। संकलित सामग्री को पुस्तक का रूप देने में मैं कहां तक सफल हो पाया हूं और आदरणीय भाई श्री राजेन्द्र सिंह जी द्वारा प्रदत्त इस दायित्व को मैं कहां तक पूरा कर पाया हूं इसका निर्णय तो वह स्वयं और पाठकगण ही करेंगे।

इसी आशा और विश्वास के साथ

रामनवमी
3 अप्रैल 2009

-ज्ञानेन्द्र रावत

भौगोलिक परिचय

राजस्थान के अलवर जिले की तहसील राजगढ़ के गांव गढ़, मांडलवास से शुरू होकर आने वाली 'भगाणी नदी', मानसरोवर बांध को भरती है तथा गुवाड़ा देवरी से शुरू होकर आने वाली 'जहाजवाली नदी', जो मंगलांसर बांध को भरती है। ये दोनों नदियां मल्लाणा के पास एक जगह मिल जाती हैं। फिर आगे तिलदह बांध को भरती हुई यह नदी ''तिलदह नदी'' के नाम से दक्षिण को बहती हुई रेडिया बांध को भरती है। वास्तव में 'जहाजवाली नदी' व 'भगाणी नदी' दोनों मिलकर ही ''तिलदह नदी'' का निर्माण करती हैं। पर चूंकि 'जहाजवाली नदी' के मंगलांसर बांध तक के जलागम क्षेत्र में किये गये जल संरक्षण कार्यों का विवरण अलग से पुस्तक में उपलब्ध है। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक में हम जहाजवाली नदी को छोड़कर शेष जलागम क्षेत्र, जिसमें 'भगाणी नदी' व मंगलांसर बांध के नीचे की 'तिलदह नदी' के संयुक्त जलागम क्षेत्र आता है, में किये गये कार्यों का ही विवरण देंगे। इस नदी को हम ''भगाणी-तिलदह नदी'' के नाम से जानते हैं।

भगाणी-तिलदह नदी की एक प्रमुख धारा गढ़ (नीलकण्ठ) गांव के पश्चिमी पहाड़ के पश्चिमी भाग से शुरू होकर मांडलवास के भोमिया जी वाले बांध को भरती हुई तथा दूसरी धारा गढ़ गांव से एक किलोमीटर उत्तर से शुरू होकर उत्तर की तरफ ही बहती हुई मांडलवास से थोड़ा आगे, एक जगह पर जाकर आपस में मिल जाती है। फिर उत्तर दिशा की तरफ ही बहती हुई यह संयुक्त धारा राजौर, मथुरावट, मान्याला व काण्यास तक जाकर फिर थोड़ा सा पूर्व की तरफ घूम जाती है। फिर नीचे दक्षिण में चौकीवाला की तरफ घूम कर मिसराला होती हुई यह नदी आगे मानसरोवर में जाकर गिर जाती है। मार्ग में इस नदी में बहुत सारे छोटे-बड़े नाले आ-आकर मिलते जाते हैं। आगे एक और नाला कांकवाड़ी के उत्तर की तरफ से चल कर थोड़ा दक्षिण-पश्चिम को घूमता हुआ काण्यास के पास मुख्य नदी के मोड़ पर आकर मिल जाता है। दूसरा नाला भी कांकवाड़ी के

उत्तर से ही चल कर दक्षिण-पूर्व की ओर बहता हुआ पश्चिम की तरफ घूम जाता है, जहां पर एक और नाला दक्षिण से उत्तर की ओर आकर इसमें मिल जाता है। फिर पश्चिम की तरफ कांकवाड़ी किले के नीचे वाले बांध में आकर उसको भरने के पश्चात् यह नाला दक्षिण में काण्यास के पास 'भगाणी नदी' की मुख्य धारा में मिल जाता है।

एक अन्य धारा गढ़ गांव के दक्षिण से उत्तर की तरफ आकर पूर्व में घूमकर गढ़ के रियासतकालीन बांध राम-कुण्ड को भरती हुई तथा पूर्वोत्तर को घूमती हुई नीचे मानसरोवर में जाकर मिल जाती है। इसके अलावा पहाड़ के नीचे दबकन गांव के सम्पूर्ण जंगल का पानी भी अन्त में मानसरोवर में ही जाकर मिलता है। यहां तक इस नदी का नाम 'भगाणी नदी' रहता है। फिर यहां से आगे मल्लाणा गांव के पास इसमें जहाजवाली नदी भी आकर मिल जाती है। यहां से आगे इस संयुक्त नदी का नाम 'तिलदह नदी' हो जाता है। यह नदी दक्षिण में तिलदह व रेडिया बांधों को भरती हुई रेडिया व नांगलदासा गांवों के बीच स्थित 'त्रिवेणी संगम' पर 'सरसा' व 'अरवरी' की संयुक्त धारा में मिल कर 'साँवाँ नदी' नाम ग्रहण कर लेती है। यह 'साँवाँ नदी' बांदीकुई के आगे बैजूपाड़ा में जाकर बाणगंगा में मिल जाती है। बाणगंगा को 'उतंगन' (उटंगन) नदी के नाम से भी जाना जाता है। यही बाण गंगा आगे जाकर पहले गम्भीर नदी में, गम्भीर नदी चम्बल नदी में और चम्बल नदी यमुना नदी में जाकर मिल जाती है। फिर यमुना नदी प्रयाग (इलाहाबाद) में जाकर अन्ततः 'राष्ट्रीय नदी गंगा' में समाहित हो जाती है। इससे आगे गंगा नदी अपने मूल नाम से ही बहती हुई अंत में 'गंगा सागर' में विलीन होकर सागर-स्वरूप हो जाती है।

भगाणी नदी अपने उद्गम से पहले पहाड़ के ऊपर स्थित पहाड़ियों के बीच में दक्षिण से उत्तर बहती है तथा बाद में थोड़ा-सा पूर्व को घूम कर पहाड़ के नीचे उत्तर से दक्षिण को बहती हुई आगे बढ़ती है। यह नदी सरिस्का के कोर व बफर जोन में बहती है। यहां की मिट्टी दोमट व पथरीली है जो फसल व वृक्षारोपण के लिए बहुत उपयोगी है।

रेडिया व नांगलदासा गांवों के बीच स्थित त्रिवेणी संगम तक भगाणी व तिलदह नदी का संयुक्त जलागम क्षेत्र (जहाजवाली नदी जलागम क्षेत्र को अलग कर देने पर) 27 डिग्री 5 मिनट 2 सेकण्ड उत्तरी अक्षांश से 27 डिग्री 21 मिनट 51 सेकण्ड उत्तरी अक्षांश तथा 76 डिग्री 19 मिनट 16 सेकण्ड पूर्वी देशांतर से 76 डिग्री 27 मिनट 45 सेकण्ड पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। रेडिया व नांगलदासा गांवों के बीच स्थित त्रिवेणी संगम में मिलने से पूर्व तक ''तिलदह नदी'' (जिसमें जहाजवाली नदी व भगाणी नदी भी स्वतः ही सम्मिलित हैं) का सम्पूर्ण जलागम क्षेत्र 395 वर्ग किलोमीटर है। इसमें जहाजवाली नदी का जलागम क्षेत्र (मंगलांसर बांध तक) 89 वर्ग किलोमीटर है; 'भगाणी नदी' का जलागम क्षेत्र (मानसरोवर बांध तक) 98 वर्ग किलोमीटर तथा उक्त दोनों बांधों से नीचे त्रिवेणी संगम तक का जलागम क्षेत्र 108 वर्ग किलोमीटर है। इस प्रकार भगाणी-तिलदह नदी का संयुक्त जलागम क्षेत्र (जहाजवाली नदी के जलागम क्षेत्र को छोड़कर) 206 वर्ग किलोमीटर है। भगाणी नदी और तिलदह नदी की रेडिया व नांगलदासा गांवों के बीच स्थित त्रिवेणी संगम तक कुल घुमावदार लम्बाई लगभग 49 किलोमीटर है।

भगाणी नदी जलागम क्षेत्र में सन् 1985 से मार्च 2009 तक तरुण भारत संघ द्वारा जन-सहभागिता से कुल 120 जल-संरक्षण संरचनाओं का निर्माण हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और महत्व

राजस्थान में अरावली की पर्वत माला में स्थित सरिस्का की खूबसूरत और हरी-भरी ऊंची पहाड़ियों के बीच पत्थरों पर धारा प्रवाह सरकती हुई एक नदी है भगाणी। इसका उद्गम नौवीं सदी पुराने नीलकंठ मन्दिर और दसवीं सदी के गढ़-राजौर जैसे पुरातात्विक महत्व के स्थल व ऐतिहासिक महत्व के कांकवाड़ी किला जिसमें औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह को कैद करके रखा था, के समीप से माना जाता है। गढ़ नीलकंठ में भगवान शिव और जैन तीर्थंकर के मन्दिर हैं। बताया जाता है कि यह मन्दिर खजुराहो के मंदिरों के समकालीन है। यह भी कि राजौरगढ़ पहले पारानगर कहलाता था जो बड़गूजर राजपूत राजाओं की राजधानी था। यहां नीलकंठ के प्रसिद्ध मन्दिर में शिवलिंग के अलावा गणेश जी की एक विशाल प्रतिमा है जिसके नीचे विक्रमी सम्वत् 1101 (सन् 1044) अंकित है। इस मन्दिर को बड़गूजर नरेश अजय पाल ने विक्रमी सम्वत् 1101 में बनवाया था। यह भी कहा जाता है कि इस क्षेत्र ने एक समय जब पाण्डव अज्ञातवास में थे, तब उन्हें पनाह दी थी।

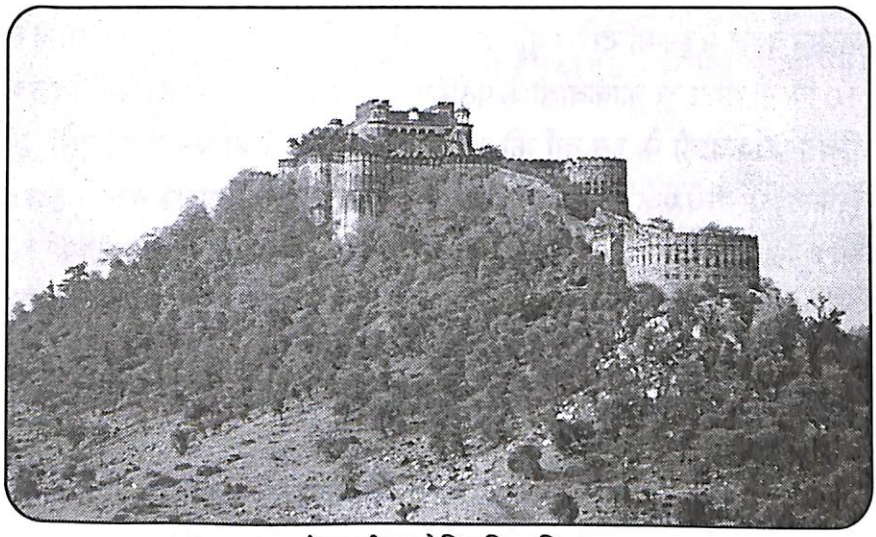

कांकवाड़ी का ऐतिहासिक किला

आज़ादी से पहले यहां का जंगल अलवर रियासत में आता था और राजपरिवार की शिकारगाह था।

सरिस्का बाघ परियोजना जिला मुख्यालय से लगभग 36 कि. मी. दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित है। यहां 20-25 किलोमीटर दक्षिण में नौवीं सदी के गढ़-राजौर के देवालय भी स्थित हैं। जैन धर्म के दिगम्बर पंथ के तीर्थंकर की नौगजा के नाम से प्रसिद्ध मूर्ति भी जो आज खण्डित अवस्था में है, यहां पर मौजूद है। पौने चौदह फीट लम्बी यह मूर्ति अपनी विशालता व कलात्मकता से प्रत्येक आने वाले पर्यटक का ध्यान आकृष्ट जरूर करती है। यहां के चतुर्भुज नाथ मंदिर में विष्णु मंदिर के नीचे एक लेख विक्रमी सम्वत् 1208 का है। इससे पता चलता है कि चक्रधारी विष्णु की मूर्ति की स्थापना वल्हण अर्जुन के पुत्र हलहन व रलहन ने की थी। यह लेख राजा पृथ्वीपाल देव के समय का है, जो शायद कन्नौज के प्रतिहारों के वंशज थे। इसके अतिरिक्त यहां के नीलकंठ महादेव का विशाल शिवलिंग एवं मन्दिर के स्तंभों पर पत्थर की खुदाई का कार्य भी देखते ही बनता है। यहां पर उत्खनन में हजारों मूर्तियाँ निकली हैं। लेकिन प्रत्येक मूर्ति कहीं ना कहीं से खण्डित जरूर है। खुदाई में पायी गयी सभी मूर्तियों का एक संग्रहालय भी बनाया गया है। कहा जाता है कि बादशाह औरंगजेब के शासन काल में इन मन्दिरों व मूर्तियों को खण्डित किया गया था। काली घाटी से 10 किलो मीटर दूर कांकवाड़ी के पठार पर एक दर्शनीय दुर्ग भी है। घने जंगल में स्थित कांकवाड़ी के इस दुर्ग की स्थापत्य कला देखते ही बनती है। इसी दुर्ग (किले) के नीचे एक प्राचीन जलाशय भी है जिसके नीचे खजूर के हजारों वृक्ष हैं जो भू-जल की प्रचुर मात्रा की उपलब्धता को दर्शाते हैं।

आज़ादी से पहले यहां से बहने वाली भगाणी नदी बारहमासी थी। यहां घने जंगल थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र को 1955 में 'सरिस्का संरक्षित क्षेत्र' तथा 1958 में 'वन्य जीव अभयारण्य' घोषित किया गया। वन्य जीवों की विविधता को ध्यान में रखते हुए 1979 में इसे 'बाघ परियोजना' में शामिल कर लिया गया और 1982 में इस क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान बनाने की घोषणा कर दी

गयी। यहां उल्लेखनीय है कि भगाणी नदी का उद्गम भी सरिस्का के कोर व बफर क्षेत्र में से ही है। यहां पर्यावरण संरक्षण की परम्परा बहुत प्राचीन है।

आज जिसे सरिस्का कहते हैं, वह अलवर से 15 कि. मी. पश्चिम तथा जयपुर से पूर्व में 108 किमी चलने के बाद आरम्भ होने वाला 1145 वर्ग कि. मी. में फैला सघन वन क्षेत्र है। प्राचीनकाल में 9वीं शताब्दी में यह क्षेत्र राज्यपुर (राजौर गढ़) और व्याघ्रराज (राजगढ़) नामक दो छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। 9वीं शताब्दी में कन्नौज का वैभव समाप्त होने के बाद भी यहां पर कन्नौज का प्रभाव, वैभव एवम् संस्कृति दिखाई देती थी।

उसके बाद से यहां बहुत राजनैतिक उथल-पुथल हुई। उसके बारे में और यहां के राजनैतिक वैभव एवम् कलात्मक धरोहरों के बारे में इतिहास की पुस्तकें आज भी मौन हैं। केवल यहां की मूर्तियां और इस स्थान पर बने मन्दिर आदि जरूर यहां के इतिहास की गाथा बताते हैं।

यहां नीलकण्ठ से कांकवाड़ी का किला तक का क्षेत्र जिसे प्राचीन काल में पारानगर के नाम से जाना जाता था, के ऐतिहासिक महत्व को जानने के लिए आज तक कोई भी आलेख या पुस्तक नहीं मिलती, लेकिन जन-कथाओं या शिलालेखों से कुछ पता लग जाता है। अभी तक यहां से दो शिलालेख मिले हैं,उनमें से एक तो राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है तथा दूसरा अलवर संग्रहालय में है, उनसे जरूर कुछ पता चलता है।

संवत् 979 ईस्वी सन् 922-23 की बैशाख सुदी 13 को गुर्जर प्रतिहार सम्राट् महिपाल नैन (क्षितिपाल देव कन्नौज) के शासन काल में सिंह पद के शिल्पी सहदेव द्वारा निर्मित तीर्थंकर, शान्तिनाथ के जैन मन्दिर का निर्माण हुआ। सागर एवं लोकदेव, इस प्रशस्ति के रचयिता हैं। उसकी लिपि नागरी, भाषा संस्कृत एवं उसका समय 10वीं शताब्दी से प्रारम्भ है। दूसरे शिलालेख में सावर के पुत्र मषदेव द्वारा संवत् 1016(सन् 959) में मन्दिर के लिए भूमिदान का उल्लेख मिलता है। अभी तक केवल ये दो ही शिलालेख हैं, जो इस प्राचीन स्थान के बारे में कुछ विवरण देते हैं। यहां लोक कथाओं में तो इस स्थान को महाभारत काल में

बनाया गया मन्दिर बताया गया है। ऐतिहासिक सत्य चाहे जो हो, लेकिन यहां का सांस्कृतिक महत्व तो कुछ कम नहीं है। वर्ष 1995 मई माह में इतिहास व पुरातत्व के महान विद्वान डा. धर्मपाल जी यहां आये थे। उन्होंने इस स्थान को देखकर कहा था कि-यह क्षेत्र निश्चित ही अति महत्वपूर्ण धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है।

जहां तक पारानगर का सवाल है, इतिहास के थपेड़े खाकर आज भी वह अपनी स्थापत्य कला के माध्यम से हमारे मध्यकालीन वैभव का परिचय दे रहा है। 3 कि. मी. चौड़े व 6 कि. मी. लम्बे क्षेत्र में फैला यह नीलकण्ठेश्वर का स्थान, जिसे पहाड़ियों के चारों तरफ से घेर कर प्राकृतिक परकोटा सा बना दिया है, में सैकड़ों विशाल मन्दिर खण्डहर के रूप में मौजूद हैं। कहते हैं कि वहां किसी जमाने में 360 विशाल मंदिर थे।

ऐसा लगता है कि यहां मौजूद हजारों मूर्तियों की प्रेरणा से ही खजुराहो की स्थापत्य कला चर्मोत्कर्ष पर पहुंची होगी। यहां की शैली जो कि खजुराहो से पूर्व की है, उसे खजुराहो शैली कहा जाना किसी भी दृष्टि से उचित नही है। उसे पारानगर शैली कहा जाना उचित होगा। इस शैली में बने यहां के मन्दिर स्थापत्य

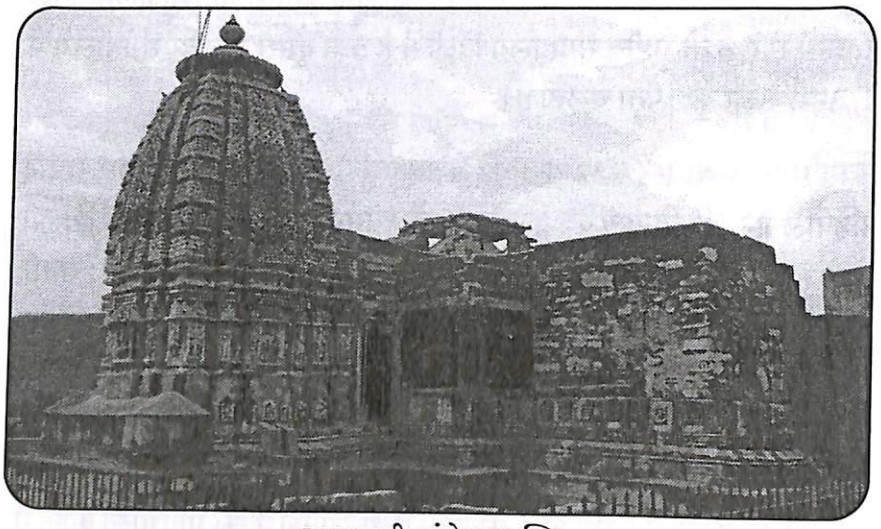

प्रख्यात नीलकंठेश्वर मन्दिर

एवम् तक्षण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। कितनी ही बावड़ियां, चौकुट और कुण्ड प्राचीन नगर की झांकी का परिचय देते प्रतीत होते हैं। अभी यहां का मुख्य मन्दिर जिसे नीलकण्ठ का मन्दिर कहते हैं, के भी उत्तर, दक्षिण पार्श्व प्रायः समाप्त हो चुके हैं तथा उनके स्थान पर नई कोठड़ियां बन गई हैं। फिर भी मंडप एवं गर्भ गृह तथा शिखर आदि अभी भी सुरक्षित हैं। ये सब अधिकतर मन्दिर की ओर अभिमुख हैं।

इस मन्दिर में विशाल चबूतरे के बाद मण्डप आरम्भ होता है। लगभग 10 फीट ऊंचे चार कोरनी स्तभों पर मण्डप बना हुआ है। स्तंभ सुन्दर मूर्तियों एवम् बेलबूटों से मण्डित हैं। कुछ मूर्तियां तो स्थापत्य कला की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। शालभाजिकाओं की नक्काशी सुघड़ और सुव्यवस्थित है। 6 फीट लम्बे-चौड़े गर्भगृह के बीच में काले पत्थर का शिवलिंग है, जिसमें अखण्ड ज्योति जलती है। यहां पर यही अकेला मन्दिर है, जिसकी आज तक पूजा होती चली आ रही है। यहां पर लगभग 50-60 मूर्तियां जुड़ी हुई हैं। मन्दिर का शिखर उत्तर भारतीय आर्य शैली का है जिसके अधोभाग में चारों ओर शेरों की मूर्तियां हैं। शिव, ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु, गणेश आदि देवताओं की मूर्तियां पौराणिक कथाओं को अभिव्यक्त करने के साथ ही कलात्मक अभिव्यक्ति को प्रकट करती हैं। यौवन की अंगड़ाई लेती हुई नायिका की प्रतिमा और काम भावना से युक्त मूतियां तो तत्कालीन तांत्रिक एवम् शृंगारी प्रभाव की द्योतक हैं।

गणेश की अनेक मूर्तियां कला में बेजोड़ हैं। काले, हल्के, सिलेटी रंग के स्थानीय पत्थरों से बनी मूर्तियां एवम् अन्य स्थापत्य के प्रस्तरखण्ड राजौरगढ़ के वैभव की झांकी देते हैं। छत के लिए निर्मित कुछेक कोरनी शिलाखण्ड दृष्टिक्रम के लिहाज से अत्यधिक महत्व के हैं। एक शीशे में 4 बांसुरी वादिकाओं का महत्वपूर्ण प्रस्तरखण्ड है। गणेश की दो मूर्तियां श्रेष्ठ हैं जो काले पत्थर पर बनाई गई हैं। इसमें अलवर संग्रहालय की प्रतिमा लगभग दो फीट ऊंची है, जिसके नीचे संवत् 1016 का लेख अंकित है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि भगवान गणेश का धड़ अधिक भारी नहीं है तथा उनकी नृत्य-भंगिमा मनोरम है।

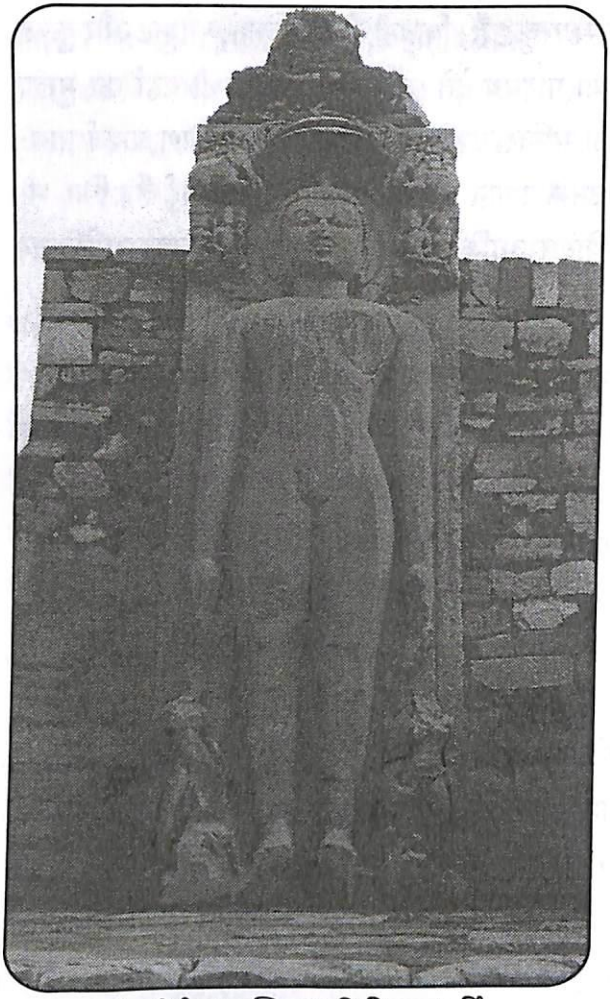

जैन तीर्थंकर शान्तिनाथ की विशाल मूर्ति

प्रतिमा का लालित्य, अलंकरण एवम् सुघड़ता बेजोड़ है। भगवान गणेश की दूसरी प्रतिमा अस्थायी संग्रहालय राजौरगढ़ में है। अष्टभुजा गणेश जी की यह प्रतिमा भी अलंकरणों से युक्त नृत्य-गणेश की है, जिसे बड़ी गहराई से बनाया गया है। अलंकरणों के बीच टिमटिमाती दो छोटी-छोटी आंखें ऐसी लगती हैं, जैसे गणेश जी देख रहे हों।

नीलकण्ठेश्वर मन्दिर से पश्चिम में 100 गज की दूरी पर गर्भगृह में एक दिगम्बर जैन तीर्थंकर शांतिनाथ की विशाल मूर्ति खड़ी हुई है, जिसके चारों ओर विशाल चबूतरे के ऊपर मन्दिर के खण्डहरों का अम्बार लगा हुआ है। इसे लोग ''नौगजा'' के नाम से जानते हैं। इसे बड़गूजर राजा के राज्य में भाईशाह महाजन द्वारा निर्मित माना जाता है। लाल पत्थर की यह विशाल मूर्ति अपने आप में अनोखी एवम् कलापूर्ण है। मन्दिर के खण्डहरों में हाथियों, संगीतकारों, नृत्यकारों, अप्सराओं, देवी-देवताओं आदि की पंक्तिबद्ध मूर्तियां दर्शनीय हैं।

कोटान की देवरी में हल्के गुलाबी रंग का शिवलिंग स्थापित है। गर्भगृह के सामने खम्भे कलात्मक मूर्तियों से बने हुए हैं। इसकी विशालता और कलात्मकता बरबस ही हमें अपनी ओर खींच लेती है। भानगढ़ के उजाड़ होने पर गढ़ से राजौरगढ़ तक तलहटी में मीणा जाति आकर बस गई। दौसा, आमेर और राजौरगढ़ उसके राज्य संचालन के केन्द्र रहे। उनके कच्चे मकानों की दीवारों तथा चबूतरों में जाने-अनजाने कितने ही देवी-देवता, अप्सराएं, नायिकाएं एवम् अंकित प्रस्तर खण्ड दबे पड़े हैं। बरसात में यहां का सौन्दर्य देखने योग्य है। धोक की हरियाली है और झरनों से पानी कलकल करता बहता है। ग्वालों के गीत और बांसुरी वादन शिव और पार्वती सुनते हैं। गणेश नृत्य कर उठते हैं। अप्सराएं झूमती हैं, गाती हैं और काम भावनाओं से संयुक्त नीलकण्ठ की मूर्तियां व प्रगाढ़ आलिंगन पाश में बंधी मैथुन युक्त हो, सृष्टि की रचना करती हैं।

धार्मिक दृष्टि से इस स्थान पर दो प्रकार के मन्दिर अभी शेष हैं। इनमें भी आश्चर्य की बात यह है कि यहां के जैन मन्दिर, शिव मन्दिरों से पूर्व के ज्ञात होते हैं। बहुत से मन्दिरों का तो केवल दहलाना बचा है जिसे देखकर पता नहीं लगाया जा सकता कि वे क्या रहे होंगे। लेकिन इनमें मूर्तियों व स्थान की स्थापत्य कला के आधार पर मुख्यतः नीलकण्ठ, कोटान, लाघो, डाबर, हनुमान तथा बाग की देवरी के शिव मन्दिर हैं और नौगजा व बतख की देवरी आदि जैन मन्दिर हैं। इनके अलावा अन्य भी बहुत से मन्दिर हैं जिनके विषय में कुछ भी स्पष्ट तौर से कहना असम्भव है।

लोक कथाओं में इस स्थान पर महाभारत काल में निर्मित मन्दिर मानने के पक्ष में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं। जैसे यहां से 17 कि. मी. दूर पूर्व-उत्तर में पाण्डुपोल है, जिसे बताते हैं, यह भीम के द्वारा बनाया गया था। उससे लगभग डेढ़ कि. मी. दूरी पर हनुमान जी की वृद्धा अवस्था में लेटे हुए मूर्ति का मिलना, जिस स्थान पर आज कल हनुमान मन्दिर बना है, अभूतपूर्व है। पास में ही 40 कि. मी. दूरी पर पाण्डवों के अज्ञातवास का स्थान विराटनगर का होना क्या साबित करता है?

पाण्डुपोल से 8 कि.मी. उत्तर में सदा बहने वाली जल धारा, नाथ सम्प्रदाय की समृद्ध परम्परा के गुरु गोरखनाथ के शिष्य भर्तृहरि की समाधि तथा अन्य नाथ

बाबाओं की समाधियां यादगार बनी हुई हैं। यहां पर हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि धर्मों के लोगों को नत-मस्तक होते देखा जाता है। साल में दो बार यहां लखी मेला लगता है।

भर्तृहरि बाबा की समाधि से उत्तर-पश्चिम में 13 कि. मी. दूरी पर तालवृक्ष नाम का स्थान है। यहां पर भी सदा बहने वाली गंगा है। ठण्डे व गर्म जल के कुण्ड हैं। यहां गंगादेवी की प्राचीन मूर्ति है। बहुत सी प्राचीन छतरियां भी यहां पर बनी हुई हैं।

नीलकण्ठ से तीन कि. मी. दक्षिण में पाराशर ऋषि के आश्रम के प्रमाण मिलते हैं। यहां रहने वाले साधुओं की मान्यता है कि यहां पाराशर ऋषि ने अपना शरीर त्यागा था अर्थात् यहां पर उन्होंने समाधि ली थी।

यहां पर ऋषियों के लिए बैठने हेतु एक प्राकृतिक कुटिया है, जिसमें एक व्यक्ति सहजता से बैठकर साधना कर सकता है। यहां एक प्राकृतिक झरना भी है। यहां आज भी सदाबहार एवम् सघन जंगल मौजूद हैं।

इस स्थान से चार कि. मी. आगे नारायणी माता का स्थान है। वहां पर सदैव बहते रहने वाली एक जल धारा है। छोटा सा प्राचीन मन्दिर है। यह स्थान भी सघन जंगलों से परिपूर्ण पहाड़ियों से घिरा हुआ है।

यहां से 8 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम में गैर आबाद नगर भानगढ़ है। यहां पर महारानी रत्नावती का महल और भव्य नगर के खण्डहर हैं। ये स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। खण्डित मूर्तियां, मन्दिर, जल कुण्ड, सदा बहने वाले झरने तथा भवन, निर्माण कला के अनूठे नमूने हैं। यह प्राचीन नगर की व्यवस्थित बसावट का बेजोड़ नमूना है। आमेर के बाद में जयपुर की बसावट भी इसी भानगढ़ की देन है। भानगढ़ की सड़कों के दोनों तरफ नालियां, चौपड़, एक सीध में बने घरों को देखकर आभास नहीं होता कि भानगढ़ कई शताब्दियों पूर्व बसा नगर है। लेकिन यहां के शिलालेख यहां की प्राचीनता के प्रमाण देते हैं। स्थान-स्थान पर बने प्राचीन मन्दिर इस नगर की विशालता एवम् वैभव को दर्शाने में

सक्षम हैं। जगह-जगह पर बनी छतरियां इस नगर की शोभा बढ़ाने के साथ-साथ प्राचीन वैभव की यादगार बनी रहेंगी।

नीलकण्ठ से ठीक पश्चिम में 7 कि. मी. दूर अजबगढ़ गांव है, यहां का प्राचीन मन्दिर अपने वैभव की गाथा सुना रहा है। पहाड़ी के ऊपर बना छोटा दुर्ग व दुर्ग के सामने बाग की चारदीवारी, जो आजकल जयसागर बांध के बीच में आ गई है अजबगढ़ के वैभव की याद में आंसू बहा रहे हैं।

सरिस्का क्षेत्र को आजकल पर्यटक, केवल सैर-सपाटे की जगह मानते हैं। लेकिन यह क्षेत्र ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवम् पुरातत्व महत्व की पहिचान है, जिसे प्रतिष्ठित नहीं किया गया है। डॉ. धर्मपाल जी ने इस क्षेत्र के ऐतिहासिक, पुरातत्वीय एवम् पर्यावरणीय महत्व को प्रतिष्ठित करने हेतु लिखा है। आशा है कि समय रहते भारत सरकार का पुरातत्व विभाग भी इस क्षेत्र के सांस्कृतिक एवम् पुरातत्वीय महत्व को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करेगा। होना तो यह चाहिए कि यहां से दिल्ली-जयपुर या अलवर ले जाई गई मूर्तियां, शिलालेख, मटके आदि वापस लाकर यहां के प्राचीन वैभव को यहीं पर सुरक्षित रखा जाये। वैसे इस हेतु अब यहां पर एक संग्रहालय बनाया जा रहा है। वह एक विधा केन्द्र के रूप में स्थापित हो सकता है। यहां पर बनाया गया पुरातत्व संग्रहालय यहां की प्राकृतिक छटा को ध्यान में रखकर बनाया जाये। यह संग्रहालय भारत का ही नहीं, अपितु दुनिया के भी आकर्षण का केन्द्र बन सकता है। आकर्षण के केन्द्र का अर्थ टूरिज्म को बढ़ावा देना मात्र कदापि नहीं है बल्कि यहां के परम्परागत कला-कौशल, वैभव व ज्ञान को समझने से है।

यह स्थान सघन प्राचीन वन के बीचों-बीच है। इससे इसका आकर्षण कई अर्थों में विशेष है। भीड़-भाड़ से दूर, शुद्ध वातावरण में इस स्थान का स्थित होना तथा स्थानीय लोगों की आस्था का केन्द्र होना भी इस स्थान के सुन्दर भविष्य का संकेत है।

यह सरिस्का आज पर्यटन की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है, इसके बावजूद यहां से इस क्षेत्र के प्राण, यहां की संस्कृति, यहां का इतिहास एवम् उसका पुरातत्वीय महत्व

दिनों-दिन समाप्त होता जा रहा है। यहां की पहाड़ियां भी पुराने मन्दिरों जैसी ही सुन्दर, खण्डहर के रूप में दिखाई देती हैं। इस सुन्दरता में यहां के पुरातत्व के प्राण बसे हैं, जिसे हमने कभी समझने की कोशिश ही नहीं की।

भारत सरकार, राज्य सरकार तथा समाज अपनी विरासत को सम्भाल कर रखने के लिए जिम्मेदार नहीं दिखता। इसी कारण सरिस्का जो भारत की विरासत है, अब लुट रही है। यहां बाघ नहीं बचे हैं और जंगल नष्ट हो रहे हैं।

सरिस्का-जमुवारामगढ़ को खनन हेतु खोलना इस बात का साक्षी है कि हमारी सरकार हमारे प्राण-पानी व अन्न को नष्ट करके खनन से पैसा कमाना चाहती है। उस हालात में जबकि राज्य की खदानों से 67 फीसदी मजदूर क्षय व श्वास संबन्धी रोगों से ग्रस्त हैं, लेकिन खान एवं भू-विज्ञान और खान सुरक्षा निदेशालय के रिकार्ड आज भी इसे नकार रहे हैं जबकि इनके सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा की दिशा में काम करने की बहुत जरूरत है। जंगल के नये कानून ने तो सरिस्का की बन्द खानों को पुनः चालू करा दिया है।

सरिस्का में 2008 में खानों का पुनः चालू होना इस क्षेत्र के भविष्य के लिए गंभीर संकट है। अब विदेशी-स्वदेशी सब सरिस्का में पुनः खनन शुरू कर रहे हैं। यह जन, जल, जंगल, जमीर, जीवन और कानून सब कुछ नष्ट कर देगा। यह खनन कानून उच्चतम न्यायालय के निर्णय की धज्जियां उड़ा रहा है। विडम्बना यह है कि फिर भी सब मौन हैं।

अरावली में परम्परागत वन-प्रबन्ध

अरावली पर्वतमाला के खासकर राजस्थान क्षेत्र में वनों की परम्परागत प्रबन्ध व्यवस्था अंग्रेजी राज्य तक स्थानीय लोगों के हाथ में रही। इसे लोग अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से जानते थे। तरीका लगभग एक जैसा ही रहा, कहीं-कहीं थोड़ा सा अन्तर जरूर था उसमें, लेकिन फिर भी मूलतः जंगल बच रहा था। यह सब कार्य अलिखित स्वतःस्फूर्त, सहज तरीके से चलता था। शायद इसीलिए आज के वन कानून की किताबों में उन सब शब्दों का उपयोग देखने को नहीं मिलता। जंगल लगाने व बचाने का काम लोगों की परम्परा व संस्कार बन गया था। प्रत्येक जाति, उप जाति अपने लिए एक प्रजाति के सभी पेड़ों को अपनी धराड़ी मानकर उसे अधिक से अधिक लगाते थे तथा उसकी रक्षा करना अपना दायित्व समझते थे।

यहां पर जंगल, गांव की सार्वजनिक सम्पदा थी। ऐसी स्थिति में सामलात देह की रखवाली भला कौन नहीं करेगा? यह जान लेना जरूरी है कि जंगल के प्रबन्धन हेतु कई अलिखित दस्तूरों का विधान था। इस विधान के अनुसार ही गांव के पहाड़, गोचर, जंगल, जोहड़ के प्रबन्ध का कार्य चलता था। स्वानुशासन पूर्ण चलने वाली इस व्यवस्था में गलती करने वाले के लिए दण्ड एवम् प्रायश्चित की भी व्यवस्था थी। इसीलिए लोग जंगल की पूरी सुरक्षा करते थे। यह कोई भगवान, देवी-देवताओं का डर या अन्धविश्वास नहीं था, बल्कि गलती करने वालों के मन पर एक नैतिक दबाव बना रहे, ऐसी एक सुसंस्कृत व्यवस्था थी। यह व्यवस्था महाभारत के भीम को पेड़ उखाड़ने-तोड़ने नष्ट करने जैसे कृत्य से रोककर पेड़ों का महत्व समझाते रहने के लिए और युधिष्ठिर को उसके बड़े भाई के रूप में प्रतिष्ठित करने जैसी ही थी।

लेकिन आज इसका उल्टा क्यों हो गया? इसका जवाब पाने हेतु हमें ग्यारहसौ वर्ष पूर्व से देखना शुरू करना पड़ेगा। तब सब भूमि गोपाल की मानी जाती थी।

इसीलिए जंगल तथा इनकी उपज भी किसी एक राजा की मिल्कियत नहीं, बल्कि सबकी थी। इन पर उस समय कोई कर (टैक्स) भी नहीं लगता था। मुगलों के अंतिम दिनों तथा अंग्रेजों के राज्य में जंगलों को वस्तु मानकर उससे लाभ कमाया जाने लगा। तभी से इन पर कब्जा करने हेतु अलग-अलग राज्यों में कानून बनने आरम्भ हुए। अलवर व भरतपुर राज्य में रून्ध बनने की प्रक्रिया कैसे शुरू हुई, यहां रूपवास रून्ध के निर्माण से लेकर उसके समाप्त होने तक की कहानी तथा इस विषय में लोग क्या सोचते हैं, का उल्लेख करने से पूर्व यहां के परम्परागत प्रबन्ध का विवरण समझना उचित रहेगा।

पहले लोग गांव के जंगल से पेड़ या अन्य कोई आवश्यक उपज लेने की तिथि निश्चित करते थे। यह तिथि पूरा गांव एक साथ बैठकर विचार-विमर्श करके ही निश्चित करता था। कांकड़बनी, रखतबनी, देव औरण्य, वाल आदि में पशुओं की चराई कब करनी है व कैसे करनी है, आदि सब मुद्दों पर खुलकर चर्चा के बाद ही इस बारे में निर्णय होता था।

सामलात देह का उपयोग करने वाले और उसके संदर्भ में निर्णय लेने वाले एक ही थे, इसलिए सभी निर्णय सबके हित में होते थे।आज निर्णय लेने वाला अलग है। यह निर्णयकर्ता जंगल के उपयोग एवम् रख-रखाव से अनभिज्ञ है। जो इसका उपयोग करता है, वह इसके विषय में कोई निर्णय नहीं ले सकता। क्योंकि वर्तमान कानून व्यवस्था ने इस पर से लोगों के हक छीन लिए हैं। जब लोगों की अपनी कोई व्यवस्था नहीं रही है, तो लोगों को जंगल बरबाद करने का दोष देना ठीक नहीं है। व्यवस्था समाप्त करने का दोष केवल पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव ही नहीं, बल्कि जीवन शैली में बढ़े भोगवाद एवम् औद्योगीकरण के कारण और पुराने गंवई दस्तूर एवम् भाव समाज से समाप्त होने से है। इसके स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थ बढ़ने लगा है, जिससे लोगों ने सामलातदेह की देखभाल करनी छोड़ दी है। इसका फल अब हम लोग ही सूखे, अकाल और बाढ़ के रूप में भुगत रहे हैं। ईंधन, लकड़ी, चारे का अभाव लोगों को अब खलने लगा है। लोग अब चिंतित हैं। अब यदि कोई इन्हें इनकी पुरानी व्यवस्था बताकर हनुमान की

तरह उनकी शक्ति का भान करा दे तो लोग पुनः अपने जंगल को सामलाती भाव से संभाल सकते हैं।

लोग मिलकर कुटुम्ब बनाते हैं। कुछ कुटम्ब मिलकर बनाते हैं गांव। और गांव वह है, जिसमें रहने वाले सब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को जानते व पहचानते हों। यहां जब कुछ नया काम करते हैं तो सभी मिलकर निर्णय लेते हैं। मिलकर उनका पालन करते हैं। जो उसे नहीं मानता है, उससे प्रायश्चित कराने की व्यवस्था भी होती है। प्रायश्चित न करे तो उसका सामाजिक बहिष्कार कर उसके साथ बोल-चाल तक बन्द कर देते हैं। जहां उक्त सारी बातों का पालन किया जाता रहा है, वहीं पर आज बचे हैं कुछ जंगल। यह सच है कि पहले गांव और जंगल के बीच एक तारतम्य था । जैसे :-

कांकड़बनी - गांवों की सीमाओं को बनाए रखने का भी काम करता था। दोनों ग्रामों के देव अलग-अलग होते थे। उसका जंगल 'कांकड़बनी' कहलाता था। यह देवता पूरे गांव पर प्रभाव रखता था तथा इस जंगल से कोई भी बिना पूरे गांव की सहमति के कुछ लेना पाप मानता था। इसी कारण यह जंगल बचा रहता था। आज भी ये जंगल बहुत सी जगह पर बचे हुए हैं तो इसी वजह से।

रखतबनी के तहत गांव के पूर्वोत्तर में लोग मिल-जुलकर अपनी क्षमता - आवश्यकतानुसार कोई ना कोई स्थान तय कर लेते थे, जिसमें गांव के स्वानुशासनरूप कोई भी हरे पत्ते या लकड़ी तक नहीं काटते थे। इस सुरक्षित भण्डार का जब अकाल या महाकाल पड़ता था तो पूरे गांव के लोग एक साथ उसका उपयोग करते थे। जैसे साड्यास गांव के पास पूर्व-उत्तर दिशा में पहाड़ पर धोक का जंगल आज भी इस काम के लिए है।

देव औरण्य वह क्षेत्र कहलाता है जिसे देवता की सम्पत्ति मानकर उसके चारों तरफ जल, गोदुग्ध मिलाकर फेरी लगाकर देवता के नाम छोड़ देते थे। इसमें भी कुछ नहीं काटते थे। ये आज भी जगह-जगह हैं और अब भी लगभग सभी जगह मिलते हैं। ये कहीं छोटे, तो कहीं बड़े आकार में हैं। लेकिन देव औरण्य के बारे में आज भी हर गांव में लोग जानते हैं।

वाल वह क्षेत्र है, जिसे मन्दिर के काम में उपयोग किया जाता है। दरअसल गांव के मन्दिर का पुजारी जो गद्दीधारी होता था, उसके नाम कुछ क्षेत्र होता था, उसे वाल कहते हैं। जैसे भीकमपुरा गांव के अखाड़े वाले मन्दिर की वाल, जो गोपालपुरा गांव के पश्चिम व भीकमपुरा से पूर्व में स्थित है। यह आजकल कटकर नंगी पड़ी है। इस भूमि पर मन्दिर के महंत खेती नहीं कराते थे, बल्कि इसे गांव के पशुओं के चराने हेतु 'वाल' के रूप में रखते थे। ये वाल केवल मन्दिर ही नहीं, राजा व जागीरदार भी पशुओं के लिए प्रत्येक गांव में रखते थे।

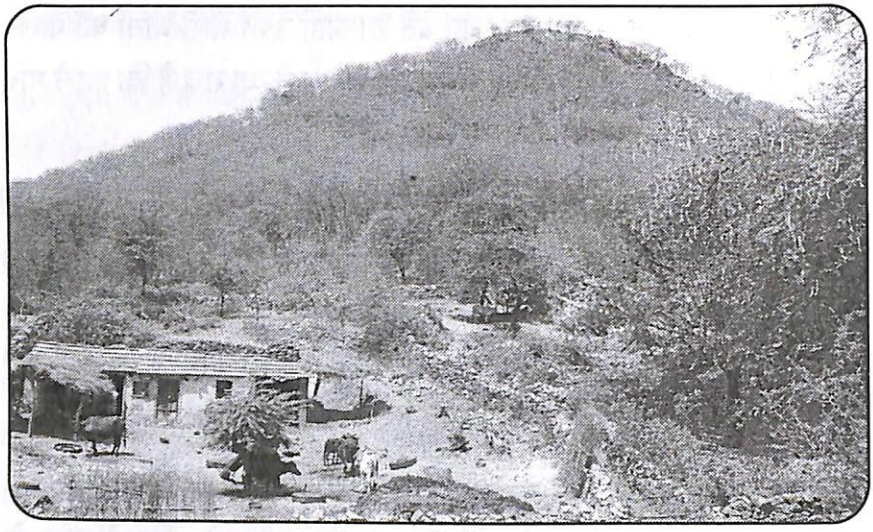

तिलवाड़ की देवबनी

देवबनी उसे कहते हैं, जहां कोई साधक रहता हो या किसी सिद्ध पुरुष ने समाधि ली हो। उनके नाम से कुछ जंगल क्षेत्र देवबनी की तरह घोषित किए जाते थे- जैसे भर्तृहरि बाबा की बनी तथा अलवर के थानागाजी क्षेत्र के गढ़बसई गांव की जोगियों की ढाणी 'आसण' की देवबनी जिसे 'सहजनाथ जी की बनी' कहते हैं, आज भी लगभग एक कि. मी. लम्बी व आधा कि. मी. चौड़ाई में बिल्कुल सुरक्षित बची हुई है। यह 'बनी' हमारी जंगल संरक्षण की प्राचीन परम्परा का जीता जागता नमूना है। इस जंगल से लोग हरी लकड़ी नहीं काटते थे। इसी तरह देवबनी, रखत-बनी, कांकड़बनी, देव औरण्य, सिद्ध क्षेत्र तो कहीं पर बाबा की बगीची, पठान की इबादतगाह आदि ऐसे अनेकों नाम हैं,

जिसका जिक्र भारत के वन कानून की किताबों में नहीं है। लेकिन आज यदि कहीं पुराने जंगल बचे हैं, तो केवल उक्त नामों वाले क्षेत्र में ही हैं। अरावली चेतना पदयात्रा के दौरान दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में जहां जंगल देखा, वहीं पाये अमुक धाम। अमुक देवता की धूणी है। भक्त का स्थान है। गुरु की समाधि है। पूर्वी-उत्तर अरावली में उसी तरह के स्थानों को देवबनी, रखतबनी, कांकड़बनी, बीड़ व वाल कहते हैं।

मध्य अरावली में देव औरण्य, बाबा का मगरा, देवी माता का मगरा, देवता की डूंगरी, पीर बाबा की बगीची, सैयद का बाग तो कहीं सिद्ध बाबा का स्थान कहकर हरे पेड़ काटना तो दूर, आज भी लोग इन स्थानों को श्रद्धा-भक्ति से नमन करते हैं।

हमारी श्रद्धा भक्ति को अन्धविश्वास कहने वाली अंग्रेजियत और भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति ने हमारे जंगलों पर कब्जा करने की दृष्टि से ही यहां उन्नीसवीं सदी में वन अधिनियम बनाने आरम्भ किये थे। तभी से जंगलों को ठेके पर कटवाया जाने लगा। लोगों के सामने ही जब उनकी 'धराड़ी' (पूजा के वृक्ष) काटे गये, तो इनकी आस्था व भावनाओं को ठेस पहुंची। जगह-जगह पीपल एवम् बरगद के वृक्ष बचाने के लिए लोगों ने विरोध भी किया, लेकिन यहां विरोध संगठित नहीं था। संगठित विरोध यहां जीवन शैली का हिस्सा भी कभी नहीं रहा था। इसलिए अंग्रेजों के द्वारा रचा गया कानूनी षड्यंत्र सफल हुआ। उन्होंने राजा व कुछ जागीरदारों को अपने कब्जे की जमीन में से रून्ध बनाने की बाध्यता कर दी थी। इसलिए कहीं-कहीं खेती की जमीन को भी रून्ध घोषित किया गया था। रून्ध की घोषणाओं से जहां अंग्रेजों तथा राजाओं, सामन्तों की ऐश शिकारगाह बनीं, वहीं दूसरी तरफ अरावली में हरियाली भी बनी रही। गरीब के पशुओं को चारा भी मिलता रहा।

ऐसे ही हैं अरावली की ठेठ पूर्वी सीमा पर घाटौली, मूरौली, मिल्समा नामक गांवों के आस-पास और भरतपुर जिले की रूपवास तहसील के सत्तर ऐसे गांव,

जो अब से 35-40 वर्ष पूर्व तक 'रूपवास रून्ध' में गहरे जंगल के साये में रहते थे जिन्हें इस रून्ध ने कभी चारे की कमी का अहसास ही नहीं होने दिया। इस रून्ध ने इस क्षेत्र के रूपवास सहित 270 ग्रामों के पशुओं को आज़ादी के बाद तक चारे की पूर्ति की थी। अरावली की ये छितरी-छोटी पहाड़ी डांग कहलाती थीं तथा मरुस्थल से आने वाले पशुओं को सहारा देती थीं। मुगल बादशाहों ने यहां बाघ का शिकार किया था। आज भी शिकार के मचान के साथ-साथ यहां बारह जोहड़ हैं, जिन पर शिकार हुआ था। यहां कई यादगार मन्दिर हैं। इस क्षेत्र में रून्ध होने से पूर्व खेती होती थी। खेती छुड़वाकर पशुओं की चराई के लिए, राज्य का कब्जा तथा आय बढ़ाने हेतु यह क्षेत्र रून्ध घोषित हुआ था।

रून्ध के कारण यहां ऐसा भी दौर आया जब खेती के मुकाबले पशुपालन का व्यवसाय अधिक लाभदायक सिद्ध हो चुका था।

रून्ध बनने के बाद राजा की गाय तथा घोड़े इसमें चरते थे। उनके लिए घास भी यहीं से कटकर जाती थी, लेकिन यहां के दूसरे पशु भी इसी में चरते थे। कभी गांव से चराई टैक्स भी लिया जाता था। फिर भी इसके आसपास रहने वाले लोग इसे अपनी चरागाह ही समझते थे। इसे सामलात सम्पत्ति मानकर इसका मर्यादित उपयोग किया करते थे। संकट में तो रून्ध ही यहां के लोगों का सहारा था।

यहां के लोग कहते हैं कि रूपवास की रून्ध से हमारा जीवन चलता रहा, इसकी गन्देल, श्ररंगा, लाम्बी तथा गुरूद खाकर हमारी गाय, भैंसें खूब दूध देती थीं। 82 वर्षीय रामजीलाल आर्य कहते हैं कि यह रून्ध गरीबों का सहारा थी। जब से यह खत्म हुई, हमें दूध, छाछ मिलना बन्द हो गया है। रूपवास के पटवारी प्रेम सागर वशिष्ठ कहते हैं कि 'सरकार दौलत मदार' से ही रून्ध बनाती है। यहीं के दूसरे पटवारी हुकुम सिंह कोली ने बताया कि रून्ध से राजा के घोड़ों तथा गायों के लिए चारा उपलब्ध होता था। रूपवास के रिटायर्ड नायब तहसीलदार कहते हैं कि 'रूपवास रून्ध पहले अकबर की शिकारगाह थी।

बाद में भरतपुर दरबार ने इसे 'रून्ध घोषित किया। यह सात हजार बीघा जमीन यदि 'मकबूजा मालकाना सामलात देह' के खाते में दर्ज होती तो राज्य इस रून्ध को तोड़ नहीं सकता था। फिर तो इस जमीन को आवंटित करने से पहले स्थानीय समुदाय से पूछना पड़ता। यह जमीन 'सरकार दौलत मदार' थी, इसलिए इसका सरकार ने आवंटन कर दिया। सरकार ने सामलात खाता समाप्त कर दिया। ग्राम समुदाय के बुनियादी हक समाप्त हो गये। इसलिए समुदाय सरकारी मनमानी के सामने बौना हो गया।'

भारत में जल, जंगल, जमीन, सूरज, आकाश सभी भगवान की साझी सम्पत्ति मानी जाती थी। इसमें राज्य कहीं बीच में नहीं आता था। इसलिए सभी लोग सहजता से इनका मर्यादित उपयोग करते थे। जन दबाव बढ़ने के बाद भी जल, जंगल, जमीन सबकी पूर्ति करते थे। भविष्य के लिए संग्रह करने की परम्परा हमारे यहां नहीं थी।

राजा भी निजी उपयोग हेतु अनुशासित रूप में प्रकृति से लेता था। प्रकृति से जितना लिया, उतना ही प्रकृति को वापस मिल जाता था। इसलिए लम्बे समय तक सन्तुलन बना रहा, लेकिन पश्चिम में अंग्रेजों का जीवनदर्शन तो 'सब कुछ इन्सान के लिए है', इसी को मानने वाला रहा है। जबकि भारतीय दर्शन में मनुष्य को प्रकृति का मामूली हिस्सा माना जाता था। इसलिए जंगल, जमीन पर राजाओं का प्रत्यक्ष नियंत्रण अपने उपभोग के लिए नहीं था। अंग्रेज शासकों को यहां के राज में यह खल रहा था, इसलिए उन्होंने जंगल को कानूनी दर्जा दिया।

अलवर राज्य में कई रून्ध बनी थीं, उसमें बड़ोद, दबकन, सरिस्का, सीलीबावड़ी, भूरियावास, भांवता की रून्ध प्रसिद्ध हैं। राजा 'सरकार दौलत मदार' की जो भूमि थी, उसे तो वह बिना किसी की सहमति से रून्ध घोषित कर सकता था, लेकिन मकबूजा मालकान सामलात देह भी रून्ध बनाई गई थी। उसके लिए जनता से पूछना पड़ता था। इसी प्रकार छोटे जमींदार व पटेलों की जमीन को मिलाकर भी रून्ध घोषित की जाती थी। दबकन-अलवर की रून्ध

इसी प्रकार बनाई गई थी। रूपवास भरतपुर की रून्ध राजा की अपनी भूमि सरकार दौलत मदार से बनाई गई थी। कांकवाड़ी-अलवर की रून्ध यहां के जागीरदार ने अपने पशुओं के लिए घोषित की थी।

मुगलकाल में सरिस्का अघोषित, सीमांकन रहित शिकारगाह थी, लेकिन 1885 में सरिस्का रून्ध का सीमांकन करके इसे शिकारगाह घोषित किया गया था। इस घोषणा के बाद इस क्षेत्र में लोगों का निवास तथा पशु चराई आदि को वर्जित कर दिया गया था। जबकि मुगल काल की सभी 'शिकारगाह' में पशु चराई, लोगों के निवास, गृह निर्माण आदि की मनाही नहीं थी। उस काल में शिकारगाह की देखभाल आदि के लिए राज्य के लोग नहीं रखे जाते थे जबकि अंग्रेजी काल में बनी शिकारगाह में तो प्रत्यक्ष पहरे-निगरानी के लिए अलग से विभाग सभी राज्यों में बनाये गये थे। इस विभाग के संचालन हेतु प्रत्येक राज्य में कानून बनाये गये थे। इन सब राज्यों के कानूनों में बहुत सी समानताएं थीं। जैसे अलवर-भरतपुर राज्य में फॉरेस्ट कानून लगभग साथ-साथ बने। रून्ध की निर्माण प्रक्रिया भी लगभग एक जैसी ही थी। रून्ध से जन उपयोगी सामग्री घास-लकड़ी आदि का भुगतान करके लेने का प्रावधान था लेकिन राजा के व्यवहार का लाभ जनता को अवश्य मिलता था। अलवर के महाराज 'रून्ध' को अकाल आदि संकट के समय जनता के लिए मर्यादित उपयोग हेतु खोल देते थे जबकि दूसरे राज्यों में ऐसा नहीं था।

लुप्त हो सकते हैं कथोड़िया आदिवासी

अरावली क्षेत्र में मेद, मेव, मीणा, अहीर, गुर्जर, एक छोर से दूसरे छोर तक संघों के रूप में फैले हुए हैं। ये सभी वनजातियां, पशुपालक, लड़ाकू कबीलों के रूप में अपना जीवनयापन करती रही हैं। ये कबीले शकों तथा हूणों के वंशज हैं। अरावली जो कि 'पारिशत्र क्षेत्र' कहलाता था, में भी मीणा और गुर्जर जन जातियां अधिक निवास करती हैं। गुर्जर तो शुरू से ही पशुपालक रहे हैं परन्तु मीणा 'उत्सैच जीवो' चोरी व लूटमार प्रवृत्ति के थे, जो शनैः शनैः खेती-बाड़ी के धंधों में लग गए। आज मीणा जनजाति में 'चौकीदार' और 'जमींदार' रूपों का स्पष्ट विभाजन नजर आता है।

स्वाभिमान, गौरव और गरिमा के साथ अरावली में रहने वाले भील मीणा मेवाड़ के स्वतंत्रता संग्राम में वहां के महाराजाओं के साथ रहे। इसीलिए मेवाड़ क्षेत्र के मीणा गरीब होने के बावजूद राज्य में अपना हिस्सा मानते रहे थे। संघर्षजीवी मीणा कबीले पकड़े जाने पर दासता स्वीकार कर लेते थे। पर अवसर मिलते ही पुनः संघर्ष करते थे। इन्हीं मीणा जनजाति के कथोड़िया कबीले के सात सौ परिवारों को स्वतंत्रता के आसपास लकड़ी के ठेकेदारों ने महाराष्ट्र से लाकर अरावली में बसाया था। ये मूल मीणा जाति के लोग ही 'कथोड़िया' कहलाते हैं। वर्तमान में यह विजयनगर (गुजरात), खैरवाड़ और डूंगरपुर (राजस्थान) में फैले हुए हैं।

ये आदिवासी मीणा कथोड़िया समूहों में रहते हैं और अक्सर समूह में ही मजदूरी करने जाते हैं। वन क्षेत्र के मध्य अथवा उसके आसपास की छोटी-छोटी झोपड़ियां इनके निवास हैं। इनकी झोपड़ियाँ बांस की बनी होती हैं। ये इतनी छोटी और नीची होती हैं कि इनमें घुसने के लिए झुकना पड़ता है। इनकी लम्बाई आठ फीट, चौड़ाई छः फीट और ऊंचाई मात्र छः से सात फीट तक होती है। झोपड़ी के भीतर एक 'डागला' खण्ड होता है, जिसमें विवाहित जोड़े सोते हैं। इस छोटी-सी झोपड़ी में पांच से दस सदस्य तक एक संग रह लेते हैं।

वर्तमान में सरकारी सहायता के चलने से अब मिट्टी और खपरैल के मकान बनने लगे हैं। परन्तु ऐसी सरकारी बस्तियां अक्सर सूनी और खण्डहर होती नजर आती हैं। कथोड़िया परिवारों की झोपड़ी में सामान के नाम पर कुछ फटे-पुराने वस्त्र, चंद मिट्टी और अल्युमिनियम के बर्तन तथा एक-दो 'गूदड़ी' (बिछाने के वस्त्र) ही नजर आते हैं।

ये लोग अपने सभी औजार (रसोई में दैनिक जीवन में काम आने वाले) लकड़ी तथा पत्थर से स्वयं ही बना लेते हैं। हैरत की बात यह है कि आग जलाने के लिए ये आज भी चकमक पत्थर का ही प्रयोग करते हैं। बीड़ी पीने के लिए 'हेतरी' नामक वृक्ष के सूखे पत्ते बीनते हैं। ये अपनी तम्बाकू अपने संग रखते हैं तथा जब भी इच्छा होती है उसी वक्त बीड़ी बनाकर पी लेते हैं।

कथोड़िया समुदाय के लोग जात-पांत अथवा ऊंच-नीच को बिल्कुल नहीं मानते। इसलिए अक्सर सामुदायिक रूप से मिल-बांटकर खाते-पीते हैं। ये लोग मूलतः मांसाहारी हैं तथा मृत पशुओं का मांस खाने के साथ-साथ उसे सुखाकर इकट्ठा भी करते हैं जो 'रिजर्व फूड' का काम करता है। मांस के अलावा कथोड़िया जंगली सफेद चूहे, गिलहरी तथा बन्दर आदि का मांस भी बड़े चाव से खाते हैं। ये अक्सर पशु-पक्षियों का शिकार भी करते रहते हैं। कथोड़िया समुदाय के लोगों का सर्वाधिक प्रिय खाना मछली है, जो विशेष अवसरों पर पकाया-खाया जाता है।

कथोड़िया समुदाय में विवाह प्रणाली बड़ी सीधी-सीधी है। ये बारात के संग शराब के बर्तन ले जाते हैं। बाराती शराब पीते हुए चलते हैं। शराब का चलन इतना आम है कि पूरा परिवार साथ बैठकर शराब पीता है। इसमें अनेकों बार बच्चों को भी साथ बिठाकर पीना-पिलाना चलता है।

कथोड़िया कन्यादान नहीं करते। विवाह में वर पक्ष को कन्या के एवज में कुछ राशि देनी पड़ती है जो कि 'ढाया' कहलाती है। आमतौर पर वह राशि एक सौ पचास या दो सौ रुपया होती है। कन्या और वर दोनों पक्षों के मध्य मात्र वर-वधू

के कपड़ों के आदान-प्रदान के अलावा अन्य कोई विशेष व्यय नहीं होता। विवाह के बाद लड़का अपनी ससुराल में रहता है तथा बच्चे हो जाने पर अलग रहने लगता है। एक पुरुष एक से अधिक पत्नियां रख सकता है। पति-पत्नि दोनों में से कोई भी अपनी इच्छानुसार एक-दूजे को त्याग सकते हैं।

कथोड़िया जनजाति में शिक्षा का प्रचार-प्रसार लगभग शून्य ही है। शिक्षा की कमी से इनमें आत्मविश्वास का नितांत अभाव है। इसी आत्महीनता से कथोड़िया समुदाय ने अपने समाज की लक्ष्मण रेखायें स्वयं ही तय कर ली हैं। ऐसी स्थिति में अन्य सवर्ण जातियों की बात छोड़ो, स्थानीय आदिवासी समाज भी इन्हें हेय (हीन) दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि कथोड़ी बच्चे घबरा कर स्कूल नहीं जाते और इक्का-दुक्का जाते भी हैं तो उपेक्षा, घृणा और व्यंग के कारण पाठशाला जाना शीघ्र ही छोड़ देते हैं।

कथोड़िया समुदाय के लोग गहन वनों, कन्दराओं, वृक्षों से लघुवन उत्पाद एकत्रित करने में निपुण होते हैं। लेकिन जब ये अपने उत्पाद बाजार में विक्रय करने पहुंचते हैं, तो इनका बड़ा शोषण होता है। राज्य, निगम तथा वन विभाग की सरकारी संस्थाएं भी इनके द्वारा एकत्रित की गई मूल्यवान वन सम्पदा जैसे धोली, मूसली, ब्राह्मी, शहद, गोंद आदि औने-पौने दामों में ही खरीदती हैं।

इधर वनों के लगातार कटने और संकुचित होने से इनका नैसर्गिक व्यवसाय भी नष्ट होता जा रहा है। इस दिशा में इस समुदाय की महिलाओं में देह व्यापार तेजी से फैल गया है। राष्ट्रीय राजमार्ग पर चलने वाले ट्रक ड्राइवरों द्वारा देह शोषण ही इनकी उदरपूर्ति है। कथोड़िया समुदाय में स्वतंत्र शारीरिक सम्बन्ध और वहां की स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले देह व्यापार के कारण इस समुदाय की आठ महिलाओं में 'एड्स' रोगी होने की सम्भावनाएं प्रकट की जा रही हैं।

कथोड़िया आदिवासी अपने पास कुछ संग्रह करके नहीं रखते। मृत्यु होने पर शव का दाह नहीं करते वरन् उसे जमीन में गाड़ते हैं। सीधे अर्थों में अपरिग्रह के सिद्धान्तों का पालन करते हैं।

कथोड़िया लोक संगीत और नृत्य के बेहद शौकीन हैं। ये विभिन्न त्योहारों और विवाह के अवसरों पर खूब खाते-पीते और नाचते हैं। बांस से बनी 'पावड़ी' और तुम्बे से बनी 'तारपी' इनके प्रमुख वाद्ययंत्र हैं। अपने वाद्ययंत्रों का निर्माण ये स्वयं ही करते हैं। गीत-संगीत में इस समुदाय का वैशिष्ट्य स्पष्ट दिखलाई देता है। कुदरती पत्थर और कांच के मोती इनके आभूषण हैं।

वन सम्पदा से अपना जीवन निर्वाह करने वाली कथोड़िया जनजाति का रिश्ता तेजी से वनों से टूट रहा है। इसका बड़ा कारण वहां के परम्परागत वनों का नष्ट होना व प्रकृति और जीवन के नैसर्गिक सम्बन्धों का टूटना ही है। अगर इस कथोड़िया जनजाति के रोजगार, शिक्षा और पुनर्वास पर शीघ्र ध्यान केन्द्रित नहीं किया गया तो इस जनजाति के नष्ट होने की प्रक्रिया दुर्भाग्यपूर्ण ही कही जायेगी।

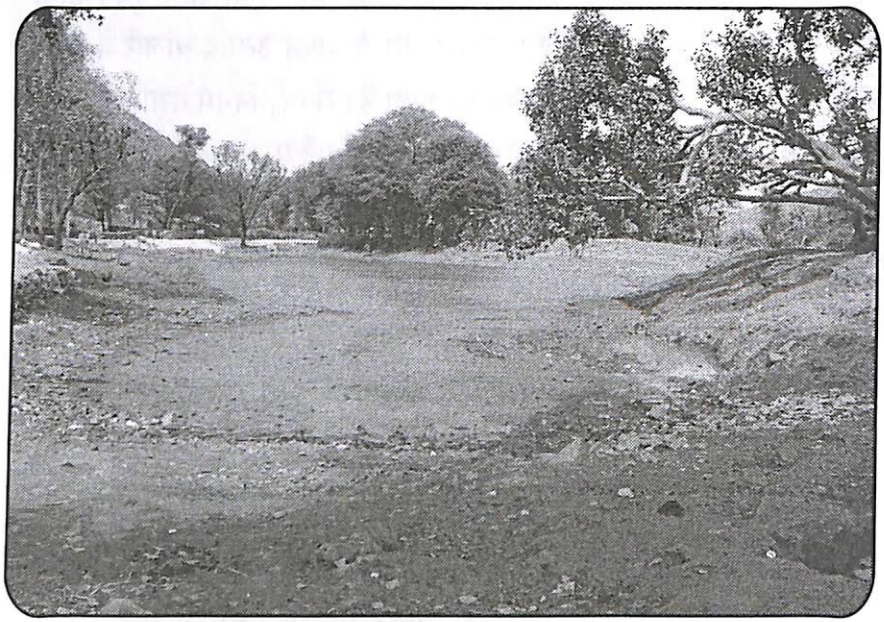

खानों से टकराते गांवों की कहानी

अरावली की पहाड़ियों में बसे सरिस्का क्षेत्र ने कभी कौरवों द्वारा उत्पीड़ित -निष्कासित पांडवों को पनाह दी थी। इस क्षेत्र में एक समय ऐसा भी आया जबकि यह अपनी पनाह के लिए सरकारी अधिसूचनाओं, अदालती आदेशों और प्रशासनिक कर्मचारियों का मोहताज हो गया। यही नहीं अरावली छोटे-मोटे अधिकारियों से लेकर बड़े से बड़े इजलासों तक अपनी सुरक्षा के लिए अर्जी देती घूमती भी रही। कहीं-कहीं उसे भरोसा भी मिला, पर उसके बाद भी वह निर्भय नहीं हो सकी। अपनी अपार खनिज और वन्य संपदा के नाते पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और लिप्सा में उसे विशेष अहमियत जरूर मिली। हुआ यह कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का मानना रहा कि इस गंवार अरावली की देह में बेशकीमती रत्नों और पत्थरों के पड़े रहने का क्या मतलब ? उन्हें तो खनन उद्योग का उत्पादन बनने के साथ-साथ संपन्न शासक वर्गों के महलों की शोभा बनना है। इसी इरादे से अरावली को लगातार काटा जाता रहा। दूसरी तरफ अरावली की कुछेक संतानों के लिए यह व्यवहार असह्य रहा। नतीजन वे तो यह कदापि नहीं चाहते थे कि यहां दुबारा दुर्योधन के दरबार का दृश्य उपस्थित हो। उन्होंने इस खनन के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। उन्होंने न सिर्फ इस औद्योगिक आक्रमण का विरोध किया, बल्कि मजबूत कृषि व्यवस्था पर आधारित ग्रामीण विकास को इस व्यवस्था के विकल्प के रूप में भी पेश कर एक अद्‌भुत मिसाल पेश की। उन्होंने संपन्न और राजनैतिक पहुंच वाले लोगों की नोट और 'रोजगार उगलने वाली' इन खानों के जवाब में गांव के गरीब लोगों द्वारा बनाए जाने वाले जोहड़ों, छोटे बांधों-तालाबों और वनीकरण को विकल्प के रूप में पेश किया। उन्होंने इसे 'टिकाऊ विकास' का आधार बताया। इस दिशा में काम करने के लिए प्रेरक की भूमिका निबाहने वाली सामाजिक संस्था थी 'तरुण भारत संघ' जिसने न केवल इसे साबित कर दिखाया बल्कि यह भी कि अन्याय के खिलाफ जीत आखिरकार सच्चाई की ही होती है।

इसमें दो राय नहीं है कि सरिस्का बाघ परियोजना के संरक्षित वन्य क्षेत्र में अवैध उत्खनन के खिलाफ मुख्य और सघन लड़ाई तो यहां के किसानों ने ही लड़ी। यह भी सच है कि वर्ष 1985 से ही इस संगठन ने लोगों के पारिस्थितिकीय और प्राकृतिक संसाधनों के विकास को लेकर काम शुरू किया और यहां के उजड़ते गांवों की सामुदायिकता को बांधों से बांधा, जोहड़ों से जोड़ा और 'वन बचाओ और वृक्ष लगाओ' अभियान से उनकी मुरझाती चेतना को हरित करने का काम किया। इसके साथ ही इस संगठन ने सरिस्का क्षेत्र की अवैध खानों के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट से ऐतिहासिक लड़ाई जीतकर एक मिसाल पेश की।

सरिस्का बचाओ आंदोलन के बारे में कहा जाये तो यह विरोध की भावना से नहीं बल्कि रचना के गर्भ से निकलने वाला आंदोलन रहा है। यह चिपको और नर्मदा आंदोलन जितना विशाल तो नहीं रहा, हां इसने व्यापक स्तर पर बुनियादी मुद्दों को उठाया जरूर। यदि यह कहा जाये कि किसी के लिए सरिस्का बचाने का अर्थ बाघों को बचाने, किसी के लिए वन बचाने, किसी के लिए पहाड़ियां बचाने, किसी के लिए जोहड़ और बांध बचाने-बनाने, तो किसी के लिए स्थानीय नागरिकों के अधिकारों को बचाने का रहा है तो कोई गलत भी नहीं है। लेकिन

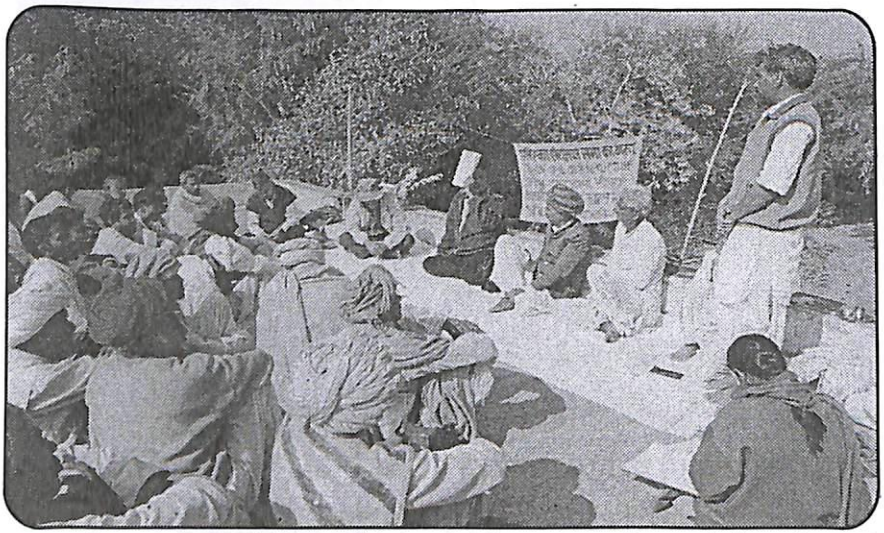

सरिस्का संरक्षण सभा को संबोधित करते हुए तभासं के जगदीश गुर्जर, सामने हैं वन विभाग के पदाधिकारी, पूर्व अधिकारी बी.डी. शर्मा, रामजी लाल चौबे व कन्हैया लाल गुर्जर

तरुण भारत संघ इन सारे मुद्दों को समग्रता में लेकर जरूर चला। कारण वह इन सबके सह-अस्तित्व के लिए चिंतित था। इसीलिए सरिस्का आंदोलन की सफलता के बाद उसने अपने दायरे को फैलाते हुए अरावली बचाने की बात की।

असलियत में सरिस्का आंदोलन ने न सिर्फ इस तथ्य को उजागर किया है कि हमारी विकास नीति में चंद लोगों का अल्पकालिक और संकीर्ण स्वार्थ रहा बल्कि यह भी स्पष्ट हुआ कि वह स्थानीय लोगों और प्रकृति के लिए भी विनाशकारी था। इस आंदोलन ने तो सरकार की पर्यावरण नीति के ढकोसलों और उनके ढुलमुलपन को सबके सामने उजागर करके रख दिया। इसने यह भी बता दिया कि विकास, राजस्व और रोजगार के नाम पर सरकारी स्तर पर कितना झूठ बोला जाता है। यही नहीं इसमें कितनी धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार किया जाता है। अपने इन्हीं संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति की खातिर सरकारी संस्थाएं किसी का लिहाज भी नहीं करतीं। इस आंदोलन ने उन लोगों की भी कलई खोल दी जो सबसे ज्यादा भारतीय संस्कृति की रक्षा का ढिंढोरा पीटते हैं। वही लोग कुछेक अपने चंद लोगों को खान मालिक बनाकर रातों-रात करोड़पति बना देना चाहते थे ताकि चुनाव में उनको पैसे के अभाव की चिंता न रहे और बिगड़े वक्त में वे उनके काम आएं। वे चाहते थे कि महानगरों में नवधनाढ्यों की गगनचुंबी अट्टालिकाओं के लिए यहां से संगमरमर जाए और राज्य को राजस्व भी मिले ताकि राज्यों में सड़कों और परियोजनाओं का जाल बिछाया जा सके। इसका नतीजा यह हुआ कि गांव के लोग किसानी और परंपरागत पेशों को छोड़ विस्थापित हो खानों और सड़कों पर मजदूरी करते नजर आए।

इन विपरीत हालातों के बावजूद उस समय भी व्यवस्था की बुझी राख में सामाजिक न्याय की थोड़ी बहुत चिनगारियां जरूर बाकी थीं। अक्सर होता यह है कि वे कभी न्यायपालिका से निकल आती हैं, तो कभी कार्यपालिका से, कभी किसी दल से या फिर कभी किसी व्यक्ति के निजी हितों से। पर यहां विकास से निकले कचरे के एक दो ढेर नहीं बड़े-बड़े पहाड़ थे; जिनसे एक बड़े सफाई अभियान या यूं कहें कि संघर्ष के बिना मुक्त नहीं हुआ जा सकता था। यही उस

समय का सच था। देखा जाये तो अरावली की पहाड़ियों में गढ़वाल की पहाड़ियों की तरह धरती के ऊपर उतने कीमती रत्न नहीं पाये जाते हैं जितने धरती के नीचे होते हैं। यहां ओक या चीड़ के वृक्ष नहीं हैं, जिन्हें काटकर क्रिकेट के बल्ले या बैडमिंटन के रैकेट बनाए जायें। यहां तो कई प्राचीनतम पत्थरों और खनिजों के अलावा संगमरमर व डोलामाइट के वे पत्थर हैं जिनसे महानगरों के नवधनाढ्य अपना महल या गगनचुंबी अट्टालिकाएं बनाने का सपना पूरा करते हैं। यहां सरिस्का में इस आन्दोलन का जन्म क्षेत्र में पायी जाने वाली अकूत खनिज संपदा में हिस्सा मांगने से नहीं हुआ। जैसा कि गढ़वाल में चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में बना दशोली ग्राम सेवक संघ अपने आंदोलन की शुरुआत में जंगल विभाग से गोंद, रेजिन और कुछ लकड़ियों की मांग कर रहा था लेकिन जंगल विभाग तो उन्हें सामान्य चीजें भी देने को तैयार न था जबकि वह बड़े-बड़े ठेकेदारों के सामने ओक के जंगल के जंगल परोस रहा था। इसी भेदभाव से दुखी होकर स्थानीय नागरिकों में पहले ठेकेदारों से जंगल को बचाने की खातिर और उसके बाद फिर पर्यावरण की खातिर जंगल बचाने हेतु चेतना का जन्म हुआ।

यहां के पत्थरों की बात करें। सच यह है कि सरिस्का में धरती के ऊपर जो पत्थर हैं, वे गरीबों के मकान बनाने में लगाये जाते हैं, उन पत्थरों को खोदने के लिए सामान्य कुदाली काफी होती है। गांव के लोग इन्हीं पत्थरों का अपने घर बनाने के लिए प्रयोग करते हैं। वह बात दीगर है कि इसे वहां की गरीबी और पिछड़ेपन के महिमामंडन की संज्ञा दी जाये। कहा जा सकता है कि चूंकि गांव वाले धरती के नीचे का संगमरमर नहीं निकाल सकते। इसलिए ऊपर का सामान्य पत्थर उपयोग करते हैं। लेकिन जब उन्हीं गांव वालों ने संगमरमर के इन रत्नों में हिस्सा मांगने के बजाय इनका खनन बन्द करने की मांग की, तब यह जाहिर हो गया कि पर्यावरण रक्षा और स्थानीय नागरिकों के अधिकार कितने जुड़े हुए हैं।

तिलवाड़ी गांव में छोटेलाल मीणा और श्योनारायण एक जोहड़ बनाने में अथक परिश्रम कर रहे थे लेकिन वहां कुओं में पानी का स्तर नहीं बढ़ा। बढ़ता भी कैसे, उनके कुओं का पानी तो लगातार गहरी होती जा रही खानें खींच रही थीं। यहीं से

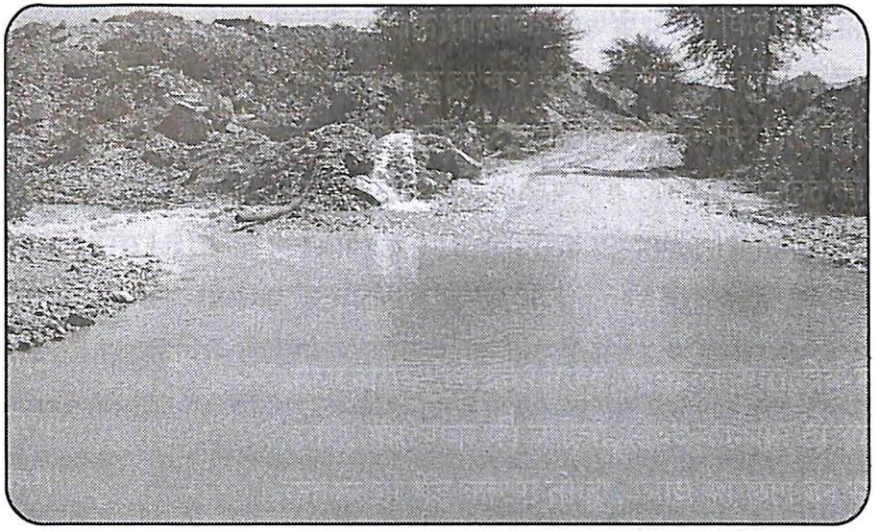

खानों से बर्बाद होता पानी

फूटने लगा था खनन के खिलाफ गांव वालों का संचित आक्रोश। पिछले 10 सालों में वे देख रहे थे कि खान मालिक सामान्य व्यापारी से करोड़पति बनते जा रहे थे और गांव वाले किसान से खान मजदूर। मजदूरी से जो कुछ उन्हें मिलता था, वह शराब के ठेकेदारों और डाक्टरों की जेब में लौट कर चला जा रहा था। उनकी सांसों में संगमरमर की धूल थी और चट्टानों पर उनके खून के छींटे। वे एक डाल भी काट लेते तो चोर कहे जाते थे जबकि सैकड़ों एकड़ वन और पहाड़ों को नष्ट करने वाले राष्ट्र निर्माता बने हुए थे। वे नहीं समझ पा रहे थे कि सरिस्का बाघ परियोजना और ये खनन एक साथ कैसे चल सकते हैं? लेकिन राजस्थान सरकार 'चोर को चोरी करने और शाह को जगने' की प्रेरणा एक साथ दे रही थी।

तरुण भारत संघ कई महीनों तक छान-बीन करने और तथ्य जुटाने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा कि सैकड़ों खानें अवैध हैं। इसी बिना पर 1991 में उसने सुप्रीम कोर्ट में एक याचिका डाल दी। 11 अक्टूबर 1991 को सुप्रीम कोर्ट ने 262 खानों में काम बन्द करने का स्थगन आदेश दे दिया।

इसी आदेश के साथ सुप्रीम कोर्ट ने राजस्थान हाईकोर्ट के पूर्व न्यायाधीश एम. एल. जैन की अध्यक्षता में एक पांच सदस्यीय समिति बनाकर उसे यह तय करने

का जिम्मा दिया कि ये खानें संरक्षित वन क्षेत्र में पड़ती हैं या उसके बाहर? दरअसल सरिस्का राजस्थान वन्य प्राणी और पक्षी संरक्षण अधिनियम 1991 के तहत बाघ परियोजना क्षेत्र, 1972 के वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के तहत अभयारण्य और राष्ट्रीय पार्क और 1953 के वन कानून के तहत संरक्षित वन घोषित है। इन कानूनों के मुताबिक इस क्षेत्र में खनन वर्जित है। संरक्षित वन क्षेत्र का मतलब है कि वहां गैर वनीय गतिविधियाँ नहीं हो सकतीं। इसका उद्देश्य न सिर्फ वहां खाली पड़ी जमीन को बचाना रहा, बल्कि उस पर वन लगाना भी था। वन संरक्षण अधिनियम 1980 की धारा दो और राजस्थान खनिज रियायत नियम 4(6) के तहत संरक्षित वन क्षेत्र में केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना कोई खनन नहीं हो सकता था और इस खनन के लिए ऐसी कोई भी अनुमति नहीं ली गई थी।

सुप्रीम कोर्ट ने जैन समिति को यह पता लगाने का आदेश भी दिया था कि क्या ये सभी खानें संरक्षित वन क्षेत्र में हैं? समिति से यह भी कहा गया था कि वह खनन से इस क्षेत्र के पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का भी अध्ययन करे।

यहां विचारणीय यह है कि अदालत को समिति नियुक्त करने की जरूरत क्यों पड़ी ? यहां यह जान लेना भी जरूरी है। दरअसल इसकी इसलिए जरूरत पड़ी क्योंकि राजस्थान सरकार और खान मालिकों का कहना था कि ये खानें संरक्षित क्षेत्र में नहीं हैं। उन लोगों का यह भी कहना था कि राजस्थान सरकार ने जनवरी 1975 की जिस अधिसूचना के तहत उस इलाके को संरक्षित वन क्षेत्र घोषित किया था, वह अंतरिम अधिसूचना थी और अभी तक संरक्षित वन क्षेत्र का सीमांकन ही नहीं हो सका है। लेकिन यह सब दलीलें दिशा भ्रमित करने और अपने कारनामों को ढकने के लिए थीं। राजस्थान सरकार का यह कहना कितना हास्यापद है कि उसने जिस इलाके को संरक्षित वन क्षेत्र घोषित कर रखा था, उसका मानचित्र उसे मालूम नहीं। एक राज्य सरकार की यह दलील भी शर्मनाक लगती है कि उसे नहीं मालूम कि वह जिस इलाके में खानों के पट्टे

जारी कर रही है, वह संरक्षित वन क्षेत्र में पड़ता है। दरअसल यह सामान्य भूल का मामला नहीं था बल्कि इसमें फरेब और गहरी साजिश थी जिसमें राजस्थान सरकार, वहां के प्रमुख राजनैतिक दल, अफसरशाही और खान मालिक सभी लोग एक साथ शामिल थे।

स्टे के बावजूद चलती रहीं खान

सुप्रीम कोर्ट के स्टे के बावजूद अवैध खानों को रोकने के बजाय वहां नयी खानों के पट्टे दिये जाना इस बात का सबूत रहा। बाद में राजस्थान सरकार की तरफ से अदालत में यह मांग की गई कि खान वाले क्षेत्र को लेकर 5.02 वर्ग किलो मीटर को संरक्षित वन क्षेत्र से अलग कर दिया जाए, भी इसी प्रस्थापना की पुष्टि करता है। अन्त में अगर कोई संदेह बचता था तो उसे पर्यावरण सम्बन्धी अधिसूचनाओं के खिलाफ भैरोंसिंह शेखावत, हरदेव जोशी और गिरिजा व्यास ने मुहिम चलाकर दूर कर दिया था। गौरतलब है कि ये लोग खान मालिकों की इस बन्दूक को मजदूरों के कन्धों पर रख कर चला रहे थे लेकिन जैन कमेटी की रपट ने इन झूठे दावों की कलई खोल दी और सुप्रीम कोर्ट ने उसे मान कर खान मालिक, राजनेता और अफसरशाही के लौहपाश को करारी चोट पहुंचायी।

वैसे सरिस्का बचाओ आंदोलन की कथा में रहस्य रोमांच के कई प्रसंग रहे। इसमें सत्याग्रह भी था और हिंसा भी। बदनामी भी थी और नेकनामी भी। कभी

हार के क्षण दिखाई पड़े, तो कभी जीत के। कभी राजस्थान के राजस्व आदि विभाग और वन विभाग आमने-सामने दिखाई पड़े, तो कभी केन्द्र और राज्य सरकार। इसमें एक तरफ किसान और वनवासी खान माफिया से लड़ते दिखाई दिए हैं, तो दूसरी तरफ मजदूर-किसानों से। कहीं बाघ और आदमी आमने-सामने दिखाई पड़े तो कहीं एक साथ। कहीं वनवासियों और जंगल विभाग में टकराव दिखाई पड़ा, तो कहीं सहयोग। कहीं वन अधिकारी बहुत चुस्त दिखाई पड़ते थे तो कहीं भ्रष्ट। कभी राज्य सरकार पर्यावरण और वन कानूनों का उल्लंघन करती दिखायी पड़ी, तो कभी न्यायपालिका का। कभी केन्द्र सरकार पर्यावरण के प्रति गहरी चिंता प्रकट करती दिखाई पड़ी, तो कभी विकास के प्रति। कभी वह पर्यावरण रक्षा के लिए कड़े कानून पास करती थी तो कभी उसे वापस लेती थी। सही, गलत और सच, झूठ की पहचान करना मुश्किल हो गया था। लेकिन अगर हम आखिरी आदमी के हितों की पहचान करें तो यह सोच सकते हैं कि यह धरती सिर्फ आदमी की नहीं, अन्य प्राणियों की भी है और यह भी कि भविष्य की पीढ़ी को यह धरती रहने लायक मिलनी चाहिए तो हमें भ्रष्टाचार और भोगवाद से निकले तमाम तर्कों के कुहासे को छांटने में दिक्कत नहीं होगी। फिर हम रोजगार, राजस्व और विकास के झांसे में भी नहीं आयेंगे।

वैसे भी इन लोगों से यहां पर दार्शनिक स्तर पर निपटने की जरूरत नहीं पड़ी। वे अपने ही बनाए कानूनों की वजह से झूठ की खदानों में गिरते रहते। यहां भी ऐसा ही हुआ। न्यायमूर्ति एम एल जैन की कमेटी ने खान मालिकों के इस झूठ का पर्दाफाश कर दिया कि संरक्षित वन क्षेत्र या सरिस्का बाघ परियोजना की सीमाएं चिह्नित नहीं हैं। राजस्थान के राजस्व विभाग और वन विभाग के नक्शे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि यहां संरक्षित वन क्षेत्र में खनन हो रहा है। जब सरकार फंसती दिखी तो उसने दलील दी कि संरक्षित वन क्षेत्र घोषित करने की अधिसूचना अभी अंतरिम है। फिर उसने किसी भी हिस्से को वन क्षेत्र से अलग करने की अपने अधिकारों की दुहाई दी। हालांकि ये सब दलीलें

सुप्रीम कोर्ट ने ठुकरा दीं। पर इस कानूनी दांवपेच के पीछे हो रही राजनैतिक घटनाओं को जाने बिना वहां कार्यरत खान माफिया का वास्तविक चरित्र कतई नहीं समझा जा सकता।

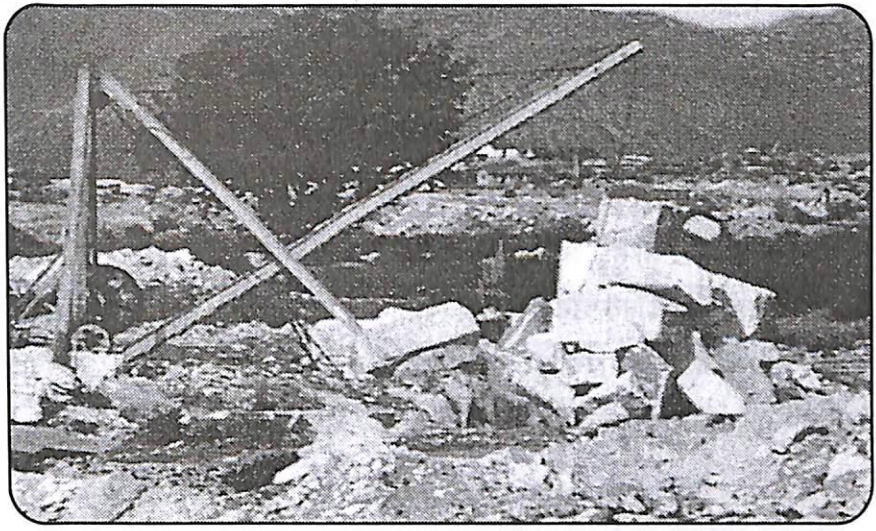

राजस्व व वन-विभाग से लापरवाह खान मालिकों द्वारा जारी खनन

बौखलाये हुए खान मालिक लगातार तरुण भारत संघ पर येन-केन-प्रकारेण दबाव डालने के भी प्रयास कर रहे थे। इस संस्था पर विदेशी एजेंट होने जैसे आरोप भी लगाये गये, तो दूसरी ओर संस्था द्वारा इलाके में लोगों का धर्मांतरण कराये जाने की अफवाहें भी फैलायी गयीं। 4 अप्रैल 93 को संस्था के मुख्यालय पर सशस्त्र हमला किया गया तथा अप्रैल 93 में जुलाई के बीच संस्था के सचिव राजेन्द्र सिंह के खिलाफ करीब 40 केस दर्ज कराये गये। उनमें एक हत्या का, तीन बलात्कार के तथा अन्य धोखाधड़ी के मामले थे। जांच के बाद इनमें से अधिकांश मामले फर्जी साबित होकर खारिज हो गये।

26 नवम्बर 1991 को जब जैन कमेटी खानों का मुआयना कर रही थी तो कालवाड़ फॉरेस्ट ब्लाक के पास खान समर्थकों ने तरुण भारत संघ के महामंत्री राजेन्द्र सिंह पर जिलाधीश की मौजूदगी में हमला किया। जबकि उस वक्त वहां पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों का अच्छा जमावड़ा मौजूद था। जब

जिला कलेक्टर ने अपनी कार में वहां से राजेन्द्र सिंह को सुरक्षित निकालने का प्रयास किया, तो हमलावरों ने कलेक्टर की कार पर ही हमला कर दिया। हमलावरों को भगाने के लिए पुलिस को गोलियां चलानी पड़ीं। इस घटना में कार के ड्राईवर सहित राजेन्द्र सिंह को भी चोटें आयीं।

बाद में तरुण भारत संघ के आश्रम में उनके वकील राजीव धवन पर भी हमला हुआ। खान मालिकों ने उस अस्पताल को भी बंद करा दिया जो तरुण भारत संघ गरीबों, विशेषकर खान मजदूरों के लिए चला रहा था। हालांकि बाद में दो हमलावरों को सजा भी हुई, पर उस वक्त सुप्रीम कोर्ट का स्टे बेअसर था। खानें न सिर्फ चल रही थीं, बल्कि उनके धमाके कानून की धज्जियां उड़ा रहे थे। सुप्रीम कोर्ट के स्टे के बावजूद राज्य सरकार के खान विभाग द्वारा 61 खानों को पट्टे जारी करना इसका ज्वलंत प्रमाण है।

दरअसल राजेन्द्र सिंह ने अपने चार साथियों के साथ अलवर जिले की थानागाजी तहसील के किशोरी गांव में अक्तूबर '85 में समाजसेवा का काम शुरू किया। तरुण भारत संघ के झण्डे तले इन युवकों ने गांव के हनुमान मन्दिर की छोटी सी कोठरी में आश्रय लिया। सबसे पहले बीमारों की चिकित्सा तथा बच्चों की शिक्षा का काम शुरू किया। इसके बाद पड़ोसी भीकमपुरा गांव में इन्हें एक छोटा सा मकान मिल गया और आस-पास के क्षेत्र में स्कूल चलाना शुरू किया। इसी दौरान उन्होंने पाया कि गांवों में लगातार सूखा बढ़ता जा रहा है और साल-दर-साल अकाल की मार पड़ रही है। अकाल की स्थिति का अध्ययन करने के बाद उन्होंने पाया कि पूरे इलाके का पर्यावरण ही तहस-नहस होता जा रहा है। गांवों में पोखर नष्ट हो गये हैं, पेड़ कट गये हैं। जंगल का घनापन गायब हो रहा है और कुओं का पानी सौ-सौ हाथ नीचे चला गया है। इस पर तरुण भारत संघ ने जोहड़ों के पुनर्निर्माण और वृक्षारोपण के काम हाथ में लिये। परंतु दूसरी ओर सरकार ने तेजी से खानों के पट्टे जारी कर दिये, जिससे निर्माण की प्रक्रिया के मुकाबले विनाश की प्रक्रिया का चक्र तेज चलने लगा। सरकारी अधिकारियों

के असहयोगपूर्ण रवैये को देखकर हताश राजेन्द्र सिंह ने उच्चतम न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर कर दी कि इस इलाके में पेड़ों को कटने से रोका जाये और खनन कार्य बंद कराया जाए। शुरू में किसी ने भी इस काम का नोटिस नहीं लिया। परन्तु जब नवम्बर '91 में उच्चतम न्यायालय ने जांच दल अलवर भेजा, तो खान मालिक सतर्क हो गये और उन्होंने जांच दल का संगठित विरोध करने की कोशिश की लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। अपनी इस लड़ाई में कानूनी मुहिम जीतने के बाद राजेन्द्र सिंह ने पूरे अरावली क्षेत्र में जनजागरण अभियान चलाने का भी प्रयास किया। उन्होंने करीब 45 स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ताओं को साथ लेकर 2 अक्तूबर से 21 नवम्बर '93 तक 1100 किलो मीटर की पदयात्रा की। अरावली के एक छोर हिम्मतनगर (गुजरात) से दूसरे छोर महरौली (दिल्ली) तक की सफल पदयात्रा के बाद उन्होंने 25 दिसम्बर से धौलपुर से पुष्कर तक की जन चेतना यात्रा भी की।

राजेन्द्र सिंह बताते हैं 'वे मुख्य रूप से सरिस्का क्षेत्र में ही जोहड़ों (पोखर), वृक्षारोपण, गोचर भूमि तथा शिक्षा के काम पर एकाग्र रहना चाहते थे। परंतु अरावली के प्रति नैतिक दायित्व महसूस करते हुए मैंने जन चेतना के लिए पद यात्राएं कीं, ताकि जगह-जगह लोग पर्यावरण को लेकर सजग हों तथा छोटे-छोटे संगठन बनाकर अपने-अपने इलाके में काम करें। हमलों और आरोपों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वे कहते हैं-'इससे मुझे ताकत ही मिलती है। जब हमने शुरू में स्कूल शुरू किये, तो लोगों ने अफवाह फैला दी कि हम स्कूल के बहाने बच्चों को उठा ले जाते हैं और जवान लड़कियों को बेच देते हैं। एक गांव में तो हमें स्कूल बन्द भी करना पड़ा। उस समय हमें बड़ी निराशा हुई, परंतु तीन महीने बाद ही गांव वालों ने आकर आग्रह किया कि हम उनके यहां अपना स्कूल दुबारा शुरू करें।'

दूसरी तरफ जैन कमेटी जिसे 31 दिसम्बर 1992 तक अपनी रपट सौंप देनी थी, लगातार विलंब करती जा रही थी। हालांकि 19 जनवरी 1992 को उसने

अंतरिम रपट सौंपी, पर अंतिम रपट 28 सितम्बर 1992 को ही वह पेश कर पाई। इस दौरान गहरी लामबन्दी और अनिश्चितता का दौर शुरू हो गया। मजदूर यूनियनें सक्रिय हो गई थीं। वे खान बंद कराने की कोशिश को मजदूरों की रोटी छीनने का प्रयास बता रही थीं। हजारों मजदूरों के बेरोजगार होने की आशंका जताई जा रही थी। खान मालिक इस बात की पुरजोर कोशिश कर रहे थे कि स्टे आदेश लागू न हो सके। राज्य सरकार और अफसरशाही उनकी मुठ्ठी में थी। इस दौरान राज्य विधान सभा ने पर्यावरण के प्रति चिन्ता जताई। लेकिन वह चिन्ता कितनी पांखडपूर्ण थी इसका खुलासा तब हो गया जब प्रमुख राजनैतिक दल पर्यावरण से ज्यादा राज्य के राजस्व को लेकर चिन्तित दिखे। यहां तक कि कानूनी लड़ाई लड़ रही संस्था तरुण भारत संघ पर सीआईए का एजेन्ट होने तक का आरोप लगा। इस आरोप को विधान सभा ने गंभीरता से लिया और छह अप्रैल 1992 को एक नौ सदस्यीय सर्वदलीय समिति बना डाली। दिखाने के लिए उसके दायरे में अवैध खनन की जांच करना भी शामिल था। लेकिन उसका असली मकसद तो कुछ और ही था, वह था तरुण भारत संघ को बदनाम करने का। इसका प्रमाण जल्द ही मिल गया। यह था सर्वदलीय समिति द्वारा जांच के नाम पर संस्था को भरसक प्रताड़ित करना। पर वह किसी ठोस नतीजे तक नहीं पहुंच सकी लेकिन विदेशी मदद को लेकर उसने संस्था को खूब लांछित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

इस बीच केन्द्र सरकार ने दो महत्वपूर्ण अधिसूचनाएं जारी कर दीं। इनमें एक अधिसूचना 29 जनवरी 1992 को जारी हुई जो पूरे देश पर लागू की जानी थी। इसमें संरक्षित वन क्षेत्र से 10 किलोमीटर और अभयारण्य से 25 किलोमीटर के दायरे में लगाई जाने वाली परियोजनाओं और खनन व निर्माण के लिए उसके आकार के मुताबिक क्रमशः राज्य और केन्द्र सरकार से अनापत्ति प्रमाण पत्र लेना जरूरी बना देने का प्रस्ताव था। दूसरी अधिसूचना 7 मई 1992 को जारी हुई। यह पर्यावरण संरक्षण अधिनियम की धारा तीन के तहत थी। यह गुड़गांव

और अलवर जिले के अरावली क्षेत्र में किए जा रहे अंधाधुंध खनन व निर्माण को रोकती थी। इन अधिसूचनाओं ने आमने-सामने की स्थिति पैदा कर दी। दूसरी अधिसूचना ने प्रोजेक्ट टाइगर और संरक्षित वन क्षेत्रों या अन्य किसी किस्म के वन क्षेत्र में केन्द्र सरकार की अनुमति के बिना खनन और भवन निर्माण को प्रतिबंधित कर दिया।

इसमें सरिस्का अभयारण्य को भी साफ तौर पर शामिल किया गया। इससे जहां खनन से पीड़ित गांव वालों और सरिस्का के बाघों और वन्य जीवों को जीवन की उम्मीद दिखी, वहीं इससे खान माफिया बौखला उठा। वे राजनेता अधिसूचना के विरोध में खुल कर सामने आ गए, जो बयानों में पर्यावरण रक्षा का नारा लगाते थे और व्यवहार में खान मालिकों की पीठ थपथपाते थे। तत्कालीन मुख्यमंत्री भैरोंसिंह शेखावत तक ने इस अधिसूचना का कड़ा विरोध किया। उनकी इस कार्यवाही ने यह साबित कर दिया कि आखिर वह चाहते क्या थे। उस समय कुछ स्थानीय अखबारों ने भी लिखा कि राज्य में 'वर्ग संघर्ष' की स्थिति बन गई है। हालांकि वे 'वर्ग संघर्ष' की परिभाषा से अनभिज्ञ लगते थे। क्योंकि यहां तो मजदूर मालिकों के खिलाफ नहीं, उनके साथ थे। यह खान मालिकों और किसान के बीच, शहरी और ग्रामीण हितों के बीच व कानून की रक्षा करने वालों और उनका उल्लंघन करने वालों के बीच संघर्ष था। यही नहीं यह विकास और ग्रामीण व्यवस्था और पर्यावरण व विकास नीति के बीच संघर्ष था। इसे झुठलाया नहीं जा सकता।

यहां यह जान लेना जरूरी है कि जैन कमेटी ने 28 सितम्बर 1992 को यानी करीब एक साल बाद सुप्रीम कोर्ट को अपनी रपट दी। पांच सदस्यीय जैन कमेटी के एक सदस्य व पर्यावरणविद् अनिल अग्रवाल ने तो रपट पर दस्तखत ही नहीं किये। उनका कहना था कि 19 अगस्त 1992 के बाद उन्हें कमेटी की बैठकों में हिस्सा नहीं लेने दिया गया। कमेटी के बाकी बचे चार सदस्यों में चेयरमैन न्यायमूर्ति एम. एल. जैन का कहना था कि संरक्षित वन क्षेत्र में पूरी तरह पड़ने वाली 215 खानों को तुरंत बन्द कर दिया जाए। इसके अलावा जो 47 खानें

आंशिक रूप से संरक्षित वन क्षेत्र में पड़ती हैं, उन्हें बन्द कर दिया जाए। जबकि तीन और सदस्यों ने अपनी रपट में यह तो मान लिया कि ये खानें संरक्षित वन क्षेत्र में पड़ती हैं, लेकिन उनका सुझाव था कि राज्य सरकार के इस प्रस्ताव को मान लिया जाए कि उन 262 खानों को वन क्षेत्र से अलग कर देना चाहिए। ये सुझाव देने वाले अतिरिक्त खान निदेशक एस. के. हावा, मुख्य वन संरक्षक उदयपुर वी. डी. शर्मा और अलवर के कलेक्टर विनोद जुत्शी थे।

जरा गौर से देखिए कि यह सुझाव देने वाले सारे अफसर ही तो थे। खान विभाग संबंधी अफसर का ऐसा सुझाव स्वाभाविक लगता है, पर वन और वन्य जीवों के संरक्षक भी ऐसा सुझाव दे बैठे। एक सिरे से यह मान भी लिया जाये कि राज्य, अफसरशाही और खान मालिकों का इरादा एक था कि सरिस्का में खनन हो। जैसे कि इतना विनाश जो हो चुका है, वैसे थोड़ा और हो जाए। हां, अगर ऐसा करना गैर कानूनी है तो उसे किसी तरह वैध बना दिया जाए। उन्हें इस बात की भी चिन्ता नहीं थी कि उस महत्वाकांक्षी सरिस्का बाघ परियोजना का क्या होगा? जो उनके वर्ग का शगल है।

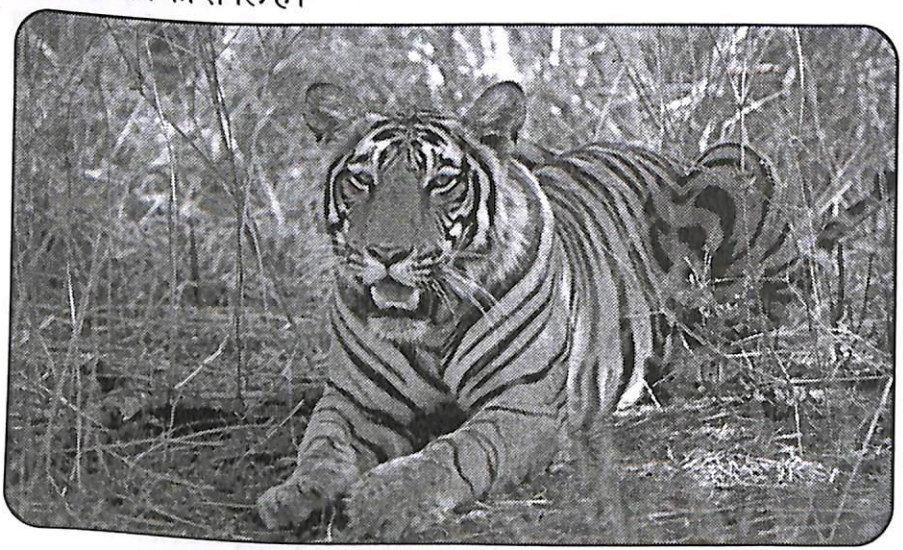

बाघ के अस्तित्व पर संकट

सरिस्का में 1988 में 43 बाघ थे पर खनन विस्फोट और जंगल कटाई के चलते 1991 में वह 18 रह गये थे। योजना आयोग के तत्कालीन सलाहकार और बाद

में पिलानी में बिड़ला शोध संस्थान में रिमोट सेसिंग (दूर संग्राही) विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एस. एस. ढावरिया ने मार्च 1992 में आयोग उपाध्यक्ष प्रणव मुखर्जी को वनों की कटाई और खनन के खिलाफ चेताया भी था। उनका कहना था कि अरावली में खुदाई और वनों की कटाई से उस समय सिर्फ उस विशेष इलाके में पानी की कमी, जानवरों के मरने और पर्यावरण बिगड़ने की समस्या है। लेकिन अगर यह सब कुछ जारी रहा तो दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के पर्यावरण के बिगड़ने का भी खतरा मंडरा रहा है। उन्होंने अपनी किताबों में उपग्रह से लिए गए चित्रों और आकड़ों के माध्यम से साबित किया था कि किस तरह पहाड़ियों के कटने के बाद थार का रेगिस्तान पूर्व की तरफ बढ़ रहा है और इस क्षेत्र में वर्षा और गर्मी का चक्र बिगड़ गया है।

उस समय एक तरफ तो खनन से होने वाले विनाश के प्रति ये अहसास बढ़ रहा था, दूसरी तरफ खानों का फायदा उठाने वाले अपने हितों की रक्षा के लिए सभी तरीके अपना रहे थे। दोनों तरफ लामबंदियां हो रही थीं और सुप्रीम कोर्ट के आदेश का खुला उल्लंघन चल रहा था। इस बीच तरुण भारत संघ लोगों को लगातार जाग्रत कर रहा था। उसने मार्च 92 में भर्तृहरि में 'पर्यावरण संरक्षण यज्ञ' करके खानें बंद कराने का निर्णय ले लिया। सुप्रीम कोर्ट में से पालपुर की खानें बंद कराने का आदेश जारी करवाना एक बड़ी उपलब्धि रही। कारण तरुण भारत संघ की पर्यावरणवादी दृष्टि थी। जोहड़ बनाने और जंगल बचाने के लिए उसने जो ग्राम सभाएं गठित की थीं, वे उसका जनाधार थीं। इस सच को झुठलाया नहीं जा सकता। इस बीच छह दिसम्बर को घटित अयोध्या की घटना का नतीजा यह हुआ कि राज्य की भैरोंसिंह शेखावत सरकार की भी विदाई हो गई।

इन स्थितियों ने संस्था का हौसला बढ़ाया और उसने जनवरी में राजनैतिक जंग का ऐलान कर दिया। तब तक 7 मई 1992 वाली अधिसूचना भी पक्की हो चुकी थी। हालांकि 29 जनवरी 1992 वाली अधिसूचना को संशोधित करके केन्द्र ने नई अधिसूचना जारी कर दी थी। उसमें सुग्राही क्षेत्र का दायरा 25 और 10 किलोमीटर से घटाकर 10 और पांच किलोमीटर कर दिया गया था। यह

खान लॉबी के दबाव का ही परिणाम था। इस अधिसूचना पर भी राजस्थान के राज्यपाल ने छह महीने तक रोक लगाये रखी थी।

तरुण भारत संघ की अगुवाई में नौ गांवों के लोगों ने प्रशासन और खान मालिकों को अल्टीमेटम दे दिया कि अगर अवैध खनन बंद नहीं हुआ तो वह 25 जनवरी से खुद खनन बंद कराएंगे। इसमें मल्लाना, गोवर्धनपुरा, तिलवाड़, तिलवाड़ी, पालपुर, कालवाड़, बल्देवगढ़, ककराली और रामपुरा आदि गांव शामिल थे। दूसरी तरफ खान मालिक, मजदूर और भाजपा व कांग्रेस सभी एक हो गए थे। शायद इतिहास में यह पहला मौका था, जब खान मालिक और मजदूरों में इतना भारी सहयोग दिखा हो। जहां बाल मजदूरी व शोषण के खिलाफ और मजदूरों के दूसरे अधिकारों के लिए कभी कोई संगठन न बना हो, वहां अचानक सरिस्का खान मजदूर संघ का गठन हो गया। ऐसी स्थिति में यहां खान मालिक संघों का बनना तो स्वाभाविक था ही। इधर भैरों जी भी राजकाज से मुक्त हो गए थे और उन्हें अगले चुनाव के लिए मोटा आसामी पाले रखना भी जरूरी था इसलिए वे खान वालों की भरपूर मदद भी कर रहे थे।

यहां एक बात और देखने को मिली, वह यह कि गांव वालों के अनुरोध और चेतावनी की जो उपेक्षा वहां पिछले डेढ़ सालों से हो रही थी, वही इस बार भी हुई और गांव वालों ने 25 जनवरी से सत्याग्रह शुरू कर दिया। मल्लाना गांव ने इसकी अगुवाई की क्योंकि उनके मशहूर मंगलांसर बांध में खानों के विस्फोट से दरार जो पड़ी थी। मल्लाणा के सरपंच पांचूराम ने तरुण भारत संघ की मदद से गांव के बूढ़ों और बच्चों तक को इस संघर्ष में झोंक दिया था।

उल्लेखनीय है कि तालाबों और जोहड़ों के निर्माण में प्रमुख भूमिका निबाहने वाली मीणा जाति के साथ-साथ इस सत्याग्रह में क्षेत्रीय सभी गांव वालों ने खूब जोर-शोर से हिस्सा लिया। देवरी गांव के जगदीश मीणा तिलवाड़ी गांव के छोटेलाल मीणा और जनसी तो इस आंदोलन के आधार-स्तंभ थे। पालपुर ग्राम सभा के अध्यक्ष श्रवण पटेल जैसे लोगों ने मुस्तैदी से मोरचे संभाले। गांव के

लोगों ने खानों पर मजदूरी करना बंद कर दिया। वे सड़कों पर धरना देकर बैठ गए जिन से होकर खानों का माल बाहर जाता था।

इस सत्याग्रह को तोड़ने की बहुत कोशिशें हुईं। मजदूरी करने वाले गांव के युवाओं को रोजी-रोटी का नाम लेकर उकसाया गया। कुछ लोग कुनमुनाए भी, पर खानों से जुड़ी दर्द भरी उनकी दास्तानें बहुत ज्यादा थीं। हर आदमी के अपने-अपने दुख-दर्द थे। इसलिए गांव के बुजुर्गों ने अपनी नष्ट होती संस्कृति और पर्यावरण को बचाने की ठान ली थी। यही प्रमुख कारण रहा कि गांव के युवक अपने समाज के खिलाफ खड़े नहीं हो सके। हालांकि खानों में बाहरी मजदूर बड़ी संख्या में लगे हुए थे लेकिन इतने बड़े विरोध के आगे वे सब खामोश बने रहे।

गांव वाले डट गए थे कि जब तक विस्फोट और पत्थरों की ढुलाई बंद नहीं होगी वे हटने वाले नहीं हैं। लोग खास-खास नाकों पर दिन-रात जमे रहे। कभी-कभी ट्रक कच्चे रास्ते से निकलने की कोशिश करते तो लोग उसे घेर लेते। खानों पर जा-जाकर काम बंद करने को कहते। इस बीच सुप्रीम कोर्ट के आदेश की लाज रखने के लिए प्रशासन भी थोड़ा बहुत हरकत में आया। 25 जनवरी से 27 मार्च तक यानी करीब दो महीने सत्याग्रह चलता रहा। मालिकों को मजबूरन खानें बंद करनी पड़ीं और गांव वालों ने अपना आंदोलन खत्म किया। 8 अप्रैल 1993 को सुप्रीम कोर्ट ने न्यायमूर्ति एम. एल. जैन की सिफारिशों को मानते हुए 217 खानें पूरी तरह बंद करने और 47 खानें उस सीमा तक जितना वे संरक्षित क्षेत्र में पड़ती हैं, बंद कराने का आदेश दिया। साथ में यह चेतावनी भी दी कि 7 मई 1992 की अधिसूचना के तहत संरक्षित वन क्षेत्र के बाहर किंतु सरिस्का बाघ परियोजना के भीतर स्थित खदानें केंद्र सरकार के पर्यावरण और वन मंत्रालय की अनुमति के बिना नहीं चल सकतीं इसलिए उनके लिए भी चार महीने के भीतर अनुमति ले लें। वरना उन्हें भी बंद करना पड़ेगा।

इस कानूनी लड़ाई में उस समय पर्यावरण का पक्ष जीतता भले ही दखाई दिया हो पर लड़ाई खत्म नहीं हुई थी बल्कि शरू हुई थी। कानून बनाने और उन्हें

लागू करवाने की जरूरत तो थी ही, पर असली जरूरत तो उस विकास नीति को बदलने की है, जिसमें हर चीज को राजस्व और विदेशी मुद्रा में नापा जाता है, जिसमें हर नया कानून अमीरों के लिए गुंजाइश और गरीबों के लिए मुसीबत लेकर आता है। इसमें दो राय नहीं कि पर्यावरणवादी संगठनों से अचानक राजनीति करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। पर राजनीति से परहेज न करने की अपील तो की ही जा सकती है। इसी तरह राजनैतिक दलों से भी यह अपील करने का समय है कि वे पर्यावरण के सवालों को अराजनैतिक मुद्दे की श्रेणी में न पड़ा रहने दें। हर राजनैतिक दल अपनी पर्यावरण नीति बनाए और इन सवालों पर चुप रहने या सत्ता के साथ संगत करने की आदत छोड़े। यह समय की मांग है।

इसमें दो राय नहीं कि तरुण भारत संघ ने सरिस्का क्षेत्र में 'औद्योगिक विकास' के विकल्प का पूरा दर्शन विकसित किया है। यह संगठन इस क्षेत्र में पानी और घटते वनों की समस्या को लेकर पिछले 20 सालों से काम कर रहा है। इस दौरान इसने लोगों के पारंपरिक अनुभवों का सहारा लेते हुए अलवर, सवाई माधोपुर, करौली, दौसा, टौंक, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, पाली, चित्तौगढ़, उदयपुर, अजमेर और जयपुर सहित राजस्थान के 20 जनपदों में हजारों छोटे बांध और जोहड़ बनाए हैं, नतीजन वहां के कुओं का जल स्तर बढ़ा और बांधों में पानी भरने से आसपास के खेतों में अच्छी फसलें भी होने लगीं। हालत यह है कि जिन कुओं में पिछले 30-40 साल में कभी-कभार ही पानी भरता था, आज वे बारहों मास भरे रहते हैं।

सरिस्का बचाओ आंदोलन दो मूल दृष्टियों का स्पष्ट टकराव है। आमतौर पर 'परंपरा' और 'आधुनिकता' के इस टकराव में आधुनिकता की विजय अवश्यंभावी मानी जाती है, लेकिन अरावली की पहाड़ियों में आधुनिकता को 'परंपरा' ने घेर लिया था। वहां आधुनिकता के साथ राजनैतिक सत्ता थी तो 'परंपरा' के साथ प्रकृति-गरीब और पिछड़े ग्रामीण। इस टकराव ने कुछ अहम सवालों को फिर से उठाया है। जैसे, क्या कृषि व्यवस्था में इतनी सामर्थ्य है कि

लागू करवाने की जरूरत तो थी ही, पर असली जरूरत तो उस विकास नीति को बदलने की है, जिसमें हर चीज को राजस्व और विदेशी मुद्रा में नापा जाता है, जिसमें हर नया कानून अमीरों के लिए गुंजाइश और गरीबों के लिए मुसीबत लेकर आता है। इसमें दो राय नहीं कि पर्यावरणवादी संगठनों से अचानक राजनीति करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। पर राजनीति से परहेज न करने की अपील तो की ही जा सकती है। इसी तरह राजनैतिक दलों से भी यह अपील करने का समय है कि वे पर्यावरण के सवालों को अराजनैतिक मुद्दे की श्रेणी में न पड़ा रहने दें। हर राजनैतिक दल अपनी पर्यावरण नीति बनाए और इन सवालों पर चुप रहने या सत्ता के साथ संगत करने की आदत छोड़े। यह समय की मांग है।

इसमें दो राय नहीं कि तरुण भारत संघ ने सरिस्का क्षेत्र में 'औद्योगिक विकास' के विकल्प का पूरा दर्शन विकसित किया है। यह संगठन इस क्षेत्र में पानी और घटते वनों की समस्या को लेकर पिछले 20 सालों से काम कर रहा है। इस दौरान इसने लोगों के पारंपरिक अनुभवों का सहारा लेते हुए अलवर, सवाई माधोपुर, करौली, दौसा, टौंक, बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, पाली, चित्तौगढ़, उदयपुर, अजमेर और जयपुर सहित राजस्थान के 20 जनपदों में हजारों छोटे बांध और जोहड़ बनाए हैं, नतीजन वहां के कुओं का जल स्तर बढ़ा और बांधों में पानी भरने से आसपास के खेतों में अच्छी फसलें भी होने लगीं। हालत यह है कि जिन कुओं में पिछले 30-40 साल में कभी-कभार ही पानी भरता था, आज वे बारहों मास भरे रहते हैं।

सरिस्का बचाओ आंदोलन दो मूल दृष्टियों का स्पष्ट टकराव है। आमतौर पर 'परंपरा' और 'आधुनिकता' के इस टकराव में आधुनिकता की विजय अवश्यंभावी मानी जाती है, लेकिन अरावली की पहाड़ियों में आधुनिकता को 'परंपरा' ने घेर लिया था। वहां आधुनिकता के साथ राजनैतिक सत्ता थी तो 'परंपरा' के साथ प्रकृति-गरीब और पिछड़े ग्रामीण। इस टकराव ने कुछ अहम सवालों को फिर से उठाया है। जैसे, क्या कृषि व्यवस्था में इतनी सामर्थ्य है कि

वह बढ़ती आबादी को रोजी-रोटी की जरूरतों को पूरा कर सके? या इसके लिए औद्योगिकीकरण ही एकमात्र समाधान है? क्या औद्योगिक विकास लोगों को विस्थापित और ग्रामीण और कृषि व्यवस्था को नष्ट किए बिना संभव नहीं है? क्या औद्योगिक विकास में प्रकृति और पर्यावरण का विनाश निहित है? क्या पर्यावरण रक्षा की बात करने वाले संगठन या स्वयं सेवी संस्थाएं विदेशी एजेंट हैं और दूसरे देशों के इशारे पर देश के औद्योगिक विकास को अवरुद्ध करने में लगे हैं? इन सवालों पर गहनता से विचार समय की मांग है। इसके बिना किसी सार्थक परिणाम की आशा बेमानी है।

तरुण भारत संघ जैसी संस्थाओं का काम आज के संदर्भ में ही नहीं, भविष्य के संदर्भ में भी उपयोगी है क्योंकि राजस्थान जैसा राज्य, जिसका एक बड़ा हिस्सा रेगिस्तान है, जहां एक भी बड़ी नदी नहीं है और जिस राज्य में 33 फीसदी के बजाय सिर्फ 3 फीसदी जंगल हैं, वहां इस तरह के कार्यों की सार्थकता पर बहस की जरूरत नहीं है। अगर हमें प्रकृति और विकास में संतुलन कायम करना है तो भ्रष्ट राजनेताओं, अफसरों और पूंजीपतियों के लौह त्रिकोण के चरित्र को समझना होगा।

दरअसल गांव में जोहड़ व बांध बनने का एक मकसद खान बंद होने से बेरोजगार हुए लोगों को रोजगार देना भी था। सरिस्का तो एक नमूना रहा है। जरूरत तो यह है कि दिल्ली से हिम्मत नगर तक 682 किलोमीटर लंबी अरावली को बचाया जाये।

भगाणी से शुरू हुआ अरावली को खनन से बचाने का अभियान

भगाणी के जलागम क्षेत्र के अन्तर्गत सरिस्का का जल, जंगल एवं जमीन बचाने एवं अवैध खानों के विरोध से शुरू हुआ आंदोलन अब अरावली बचाओ अभियान का रूप लेता जा रहा है। सरकार की जापान समर्थित हरित अरावली परियोजना और पर्यावरण संरक्षण संबंधी अधिसूचनाओं को ऊपर से देखने पर अरावली बचाओ अभियान के रास्ते में कोई टकराव नजर नहीं आता। लेकिन खान माफिया और खनन नीति से संघर्ष किए बिना यह अभियान आगे बढ़ ही नहीं सकता था। हालांकि इस अभियान का क्षेत्र दिल्ली से गुजरात के हिम्मतनगर तक जाता है। पर अरावली का सबसे बड़ा हिस्सा राजस्थान में पड़ने के नाते सबसे बड़ी लड़ाई वहीं होने की संभावना थी।

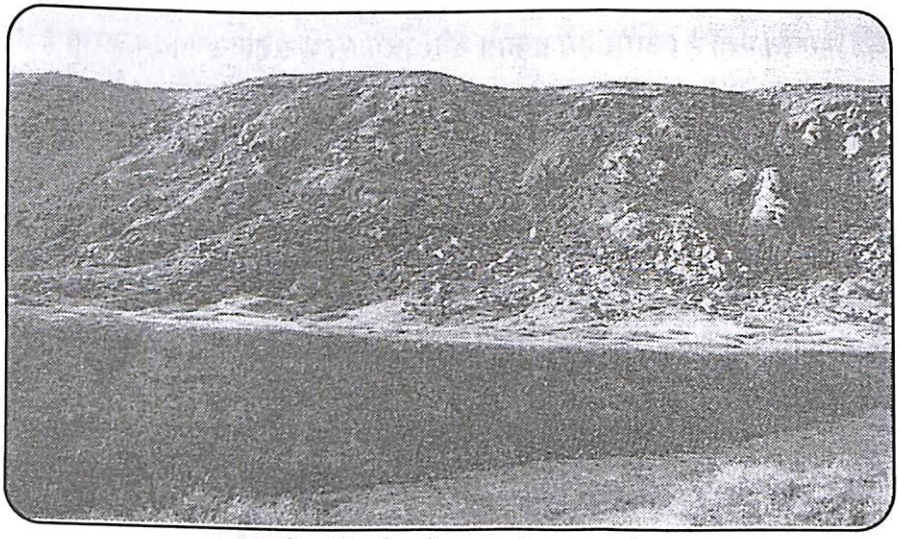

आखिर किससे कहे अरावली अपना दर्द

गौरतलब है कि राजधानी और राजस्थान के कुछ बुद्धिजीवियों और पर्यावरणविदों के सहयोग से बने अरावली संरक्षण कार्य दल के लोगों ने दिल्ली और जयपुर में बहुतेरी बैठकें कीं। इस बाबत यहां अगस्त 1993 में नई दिल्ली में हुई पर्यावरणविदों की बैठक का उल्लेख करना उचित रहेगा। गांधी शांति

प्रतिष्ठान में हुई इस बैठक में दो अक्टूबर 1993 से पूरे अरावली क्षेत्र में पदयात्रा करने और इस क्षेत्र के लोगों में पर्यावरण चेतना जगाने का फैसला किया गया था। इसमें अरावली के बारे में विस्तृत जानकारी इकट्ठी करने और इस क्षेत्र के जन-प्रतिनिधियों को भी अरावली के बारे में सोचने पर मजबूर करने का निर्णय लिया गया था। बैठक में मौजूद लोगों का यह भी मानना रहा कि अरावली की पर्यावरण संबंधी अधिसूचना से पर्यावरण सुग्राही क्षेत्र का दायरा 25 किलोमीटर करने, उसे ठीक तरह से लागू करने और अवैध खनन रोकने के लिए सरकार पर दबाव बनाया जाना बेहद जरूरी है।

इस मौके पर खनन से पर्यावरण को होने वाले नुकसान की चर्चा करते हुए (जीएसआई) भारतीय भू विज्ञान सर्वेक्षण के पूर्व निदेशक और जयपुर के पर्यावरण अध्ययन संस्थान के निदेशक एम.एल. झंवर ने बताया था कि बिजौलिया खान क्षेत्र में किए गए अध्ययन के अनुसार यहां पिछले 20 सालों के दौरान खनन से 90 फीसदी जंगल नष्ट हो गए हैं। इसके अलावा खेती की जमीन भी घटी है। पिछले 20 सालों में बंजर जमीन का 67.5 फीसदी की दर से विस्तार हुआ है। इसके अलावा उसमें खनन से होने वाले वायु प्रदूषण और बीमारियों के बढ़ने के भी साफ सबूत मिले। लेकिन जयपुर में हुई बैठक में जो परचा पेश किया गया, उसके दावे चौंकाने वाले रहे। उसके अनुसार अरावली में सिर्फ खनिज संपदा ही नहीं, जैव संपदा का भी भंडार है। लेकिन यहां की जैव विविधता और प्राकृतिक प्रजातियां तेजी से लुप्त हो रही हैं। इसका मुख्य कारण खनन और जंगलों की कटाई है। इन लोगों का दावा था कि थार रेगिस्तान आधा किलोमीटर सालाना की गति से हर साल 160 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को रेतीले रेगिस्तान में बदल रहा है। इस दल से संबंधित लोगों का यह दावा रहा कि जंगलों के कटने और खुदाई होने से उत्तर-पश्चिम भारत की जलवायु पर गहरा असर पड़ा है। तापमान का 45 से 50 डिग्री सेल्सियस पर पहुंचना और मानसून काल का घटना इसका सबूत है। बताते हैं कि पहले यह काल सौ दिनों का होता था, पर अब 50-60 दिन का ही रह गया है। इसके अलावा जो पानी 10 दिन में बरसना चाहिए था, अब वो एक ही दिन में बरस जाता है।

गौरतलब है कि इन आंकड़ों को जोधपुर का मरुस्थलीय शोध संस्थान भी चुनौती देता रहा है और इनकी शुद्धता पर विवाद भी हो सकता है। पर इतना तय है कि अरावली का विनाश हो रहा है। सरकार ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए जापान और यूरोपीय समुदाय के सहयोग से हरित अरावली योजना शुरू की। जापान के (ओईसीएफ)''ओवरसीज इकॉनामिक फंड'' और यूरोपीय समुदाय की तरफ से इस योजना को 172 करोड़ रुपए की राशि मिली। 324 करोड़ रुपए भी बाद में मिले। हरियाणा के सोहना, गुड़गांव और फरीदाबाद में हरित अरावली परियोजना के कार्यालय बने। वहां बबूल लगाए गए पर अरावली की लाल देह पर हरी चादर पड़ने के बजाए उसमें लगातार सफेदी आती चली गई और वहां गड्ढे बनते गए।

अभियान से जुड़े गांधीवादी नेता राजीव वोरा ने इस बारे में कहा कि अरावली तो 692 किलोमीटर लंबी बताई जाती है और इसका क्षेत्रफल 50,000 वर्ग किलोमीटर है। क्या इसकी रक्षा का बीड़ा उठाना आसान काम है। सबसे पहले उनका कहना था कि हम इस क्षेत्र की जनता से संपर्क करने और उन्हें जगाने की कोशिश करेंगे। उन्होंने कहा कि नर्मदा आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरी यही रही कि उसे जनता का उतना व्यापक समर्थन नहीं मिला जितना गुजरात के मुख्यमंत्री चिमनभाई पटेल को मिला था। इसलिए श्री वोरा ने जन संपर्क और जन चेतना पर ज्यादा जोर दिया। इसके साथ उन्होंने अरावली पर विधिवत अध्ययन को भी जरूरी माना और इस हेतु अरावली पर्वतीय क्षेत्र शोध संस्थान बनाने पर भी उन्होंने काफी जोर दिया।

दरअसल इस आंदोलन की कल्पना सरिस्का बचाओ आंदोलन की सफलता से पैदा हुई। तरुण भारत संघ के नेतृत्व में सरिस्का में अवैध खनन के विरोध में चलाए गए राजनैतिक और कानूनी संघर्ष की जीत के कई सार्थक नतीजे रहे। सुप्रीम कोर्ट की ओर से अवैध खानों को बंद करने के आदेश और आंदोलन के मद्देनजर ही केंद्र सरकार ने सात मई 1992 को अरावली संबंधी अधिसूचना जारी की। इसी क्रम में आई 28 जनवरी 1993 की पूरे देश पर लागू होने वाली पर्यावरण संबंधी अधिसूचना का अरावली क्षेत्र में ही सबसे ज्यादा विरोध हुआ।

इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि अरावली बचाओ अभियान के नाम पर जो कुछ पहल हुई, वह सरिस्का बचाओ आंदोलन का ही विस्तार रही। वैसे भी पूरे अरावली क्षेत्र में सरिस्का ही ऐसी जगह रही, जहां सबसे ज्यादा वनस्पति और जैव प्रजातियां बची हुई हैं। इसलिए आगे भी इस अभियान का केन्द्र या मॉडल सरिस्का ही रहे, ऐसा लोगों का मानना था। हालांकि इस अभियान में तमाम स्वयं सेवी व पर्यावरणवादी संस्थानों को जोड़ने की कोशिश की गई। पर साथ में यह भी कहा गया कि इसमें लोग संगठन के बजाए निजी हैसियत से शामिल हो रहे हैं और इसका नेतृत्व सामूहिक ही रहेगा।

क्षेत्र की दृष्टि से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अरावली के 50 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का 43,315 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र राजस्थान में, छह हजार वर्ग किलोमीटर हरियाणा में और बाकी गुजरात और दिल्ली में पड़ता है। इस पूरे क्षेत्र में 28 हजार खानें बताई गईं। उस वक्त कहा गया कि अगर इतनी खानें बंद होती हैं तो करीब तीन लाख मजदूरों का अस्थायी रोजगार छिनेगा। खान समर्थक अक्सर यही भय दिखाते थे। इस बारे में तरुण भारत संघ के राजेन्द्र सिंह का कहना रहा कि इस अभियान में अरावली को हरा-भरा करके इससे ज्यादा लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। फिर जो काम विनाशकारी है, उसे रोजगार या राजस्व के आधार पर किसी भी कीमत पर सही नहीं ठहराया जा सकता।

अरावली क्षेत्र का सबसे बड़ा हिस्सा राजस्थान में ही पड़ता है। इसलिए खनन के खिलाफ यहीं व्यापक संघर्ष की संभावना थी। उस समय यहां के कई नेताओं में गुजरात के चिमन भाई पटेल बनने की होड़ भी रही। इसे नकारा नहीं जा सकता। खान मालिकों के लिए 28 जनवरी 1993 की पर्यावरण अधिसूचना के विरोध में लगी भाजपा और इंका नेताओं की कतार इसका जीता-जागता सबूत रही। इसके अगले चरण में अगस्त 93 माह में सरिस्का बचाओ आंदोलन समिति के तत्वावधान में सरिस्का के टहला गेट पर 'जंगल बचाओ सम्मेलन' का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में सरिस्का के चारों तरफ हो रही शिकारियों की नई बसावट, खनन, जंगलात विभाग की अनियमितताओं और लोगों की भूल के कारण हो रही सरिस्का के जंगल को बरबादी से बचाने के संबंध में महत्वपूर्ण

प्रस्ताव पारित हुए। सम्मेलन में सरिस्का के चारों तरफ बसे 52 गांवों के प्रतिनिधियों, तरुण भारत संघ, पर्यावरण विज्ञान केन्द्र, नई दिल्ली, देश भर से आए पर्यावरणविदों, जंगलात विभाग के अधिकारियों, कर्मचारियों और अलवर के वन विशेषज्ञ रूप सिंह एवं कर्नल मान सिंह ने भाग लिया।

इस सम्मेलन की अध्यक्षता मनोहर लाल ने की। इसमें सबसे पहले खोह एवं बीसूणी की ढाणी में बसे लोगों और शिकारियों के कारण सरिस्का में बढ़ती जीवों की हत्या एवं उनके द्वारा काटे गए हरे बांस एवं जंगल की बरबादी रोकने के लिए गहन चिंतन किया गया। इसके बारे में वहां मौजूद सरिस्का के निदेशक ने जवाब दिया कि वे लोग सरिस्का की भूमि पर बसे नहीं हैं लेकिन उनके कारण सरिस्का को नुकसान अवश्य हो रहा है। इसे रोका जाना चाहिए और इस पर विशेष ध्यान देना होगा। यही नहीं सरिस्का में बढ़ती चराई की समस्या पर भी सम्मेलन में आए लोगों ने चिंता व्यक्त की। सरिस्का में अंदर के गांवों से आए हुए लोगों का कहना था कि सरिस्का में बाहर गांवों से भेड़, बकरी, ऊंट आकर उनके जंगल की घास चर जाते हैं। इसको रोका जाना चाहिए। चूंकि दूर से आई सैकड़ों भेड़ें सरिस्का की सारी घास चर जाती हैं, इसलिए सरिस्का में रहने वालों एवं आसपास के गांववासियों को चारे के लिए पेड़ काटने पड़ते हैं। यदि बाहर से आने वाली भेड़-बकरियों एवं ऊंटों की चराई रोक दी जाए तो जंगलों में रहने वाले लोग स्वतः ही पेड़ काटना बंद कर देंगे क्योंकि यहां के रहने वाले लोगों के पशुओं के लिए प्रत्येक गांव के गांवाई जंगल में ही काफी चारा उपलब्ध रहता है। इस विषय में क्षेत्र निदेशक ने विभाग का पक्ष रखते हुए कहा था कि गांव वाले विभाग के कर्मचारियों की मदद करें, तभी बाहर से आने वाली भेड़-बकरियों को रोका जा सकता है। इसके अलावा गांव वालों ने विभाग के कर्मचारियों की अनियमितताओं की तरफ भी संकेत किया। निदेशक का कहना था कि ये अनियमितताएं भी गांव के लोग ही रुकवा सकते हैं। इस पर सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि सरिस्का में कटान करने वाले बाहर के लोगों को जंगलात विभाग एवं गांववासी मिलकर रोकेंगे। 2 दिसम्बर 92 को देवरी में हुई दुर्घटना विभाग की नासमझी के कारण हुई और उसमें लोगों के साथ अन्याय हुआ था। इस बारे में देवरीवासियों को न्याय दिलाया जायेगा।

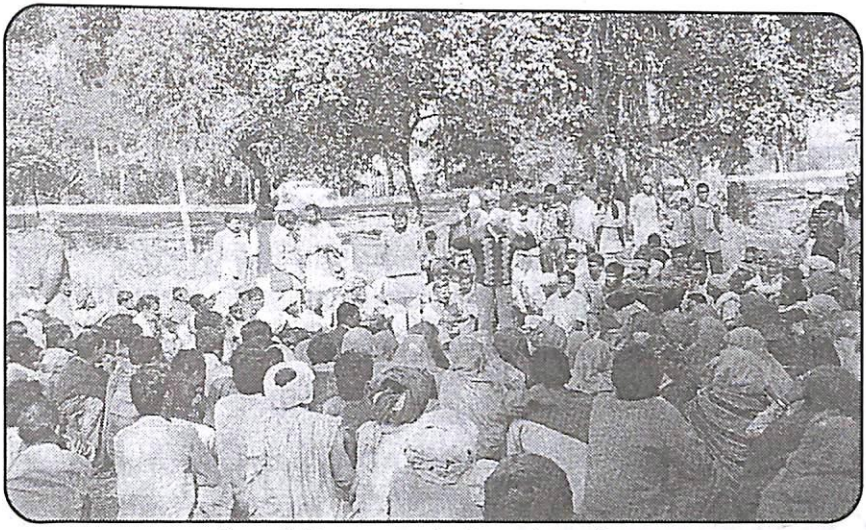

बैठक में लिया अरावली को बचाने का संकल्प

सरिस्का के चारों तरफ बसे गांवों से आए प्रतिनिधियों ने इस बाबत एक मजबूत संगठन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। इस संगठन का नाम सरिस्का बचाओ आंदोलन रखने एवं इसके संचालन हेतु एक संचालक मंडल के गठन का भी निर्णय किया गया। यह संगठन गांव स्तर पर ग्राम सभा के नाम से जाना जाएगा। क्षेत्रीय समस्याओं के मुद्दों पर संघर्ष करने के लिए बने क्षेत्रीय संगठन 'सरिस्का बचाओ आंदोलन' के साथ क्षेत्र का नाम और जोड़ दिया जाएगा और पूरे सरिस्का क्षेत्र के लिए बने संगठन का मुख्यालय तरुण आश्रम, भीकमपुरा में रहेगा। सम्मेलन में स्पष्ट किया गया कि अभी यह आंदोलन केवल दो मुद्दों पर कार्य करेगा। एक तो सरिस्का में चल रहे खनन को रुकवाने और दूसरा सरिस्का के चारों तरफ हो रही नई बसावटों को हटवाना, सरिस्का में आने वाले बाहर की भेड़, बकरियों, ऊंट एवं पशुओं को रुकवाना, सरिस्का के जंगलों का कटान रुकवाना एवं शिकारियों को पकड़वाना अहम् होगा। इन मुद्दों पर चर्चा के बाद सर्वसम्मति से संघर्ष आरंभ करने की कार्ययोजना बनाने के लिए भी दो समितियों का गठन किया गया। एक समिति खनन के मुद्दे पर काम करेगी तथा दूसरी समिति सरिस्का के चारों तरफ हो रही नई बसावटों को रुकवाने के लिए आंदोलन चलाएगी। इन दोनों के कार्यालय अलग-अलग स्थानों पर रहेंगे, जो आवश्यकतानुसार तय किए जाएंगे।

इस सम्मेलन का निष्कर्ष था कि हम सरिस्का के आसपास रहने वाले सब लोग यह मानते हैं कि हमने भारत भूमि पर जन्म लिया है, इसलिए हम सब इस भू भाग को प्यार करते हैं। हम सबको मिलकर यहां के सजीव भू भाग पर खड़े हरे जंगलों, जीवों एवं संपूर्ण प्रकृति में व्याप्त नफरत, हिंसा, तनाव, भय, अविश्वास, बेरोजगारी व भुखमरी को समाप्त करना है। यहां पर हरे-भरे जंगल, जंगली जीव, खेती, पशु पालन को प्रोत्साहन एवं स्वावलंबी उद्योग खड़े करने हैं। मानव का जंगलों एवं जंगली जीवों के बीच प्रेममय रिश्ते बनें और वह स्थायी रहें, यह प्रयास भी करने हैं।

सम्मेलन में घोषणा की गई कि हम यह भी स्वीकारते हैं कि हमारी ही भूल से यहां के जंगल बरबाद होते रहे हैं। कुछ लोगों के मन में इनके भोग की इच्छा बढ़ गई थी, ये प्रकृति विजेता प्रलोभन देने हेतु रोजगार दाता बनना चाहते हैं और ऐसा प्रयास भी कर रहे हैं। ऐसे लोगों की सोच है कि यहां के गरीब लोगों के जीवन का सहारा खेती व पशुपालन को समाप्त कर दिया जाये और यहां की धरती मां के हृदय को चीरकर इसे निर्जीव बनाया जा सके।

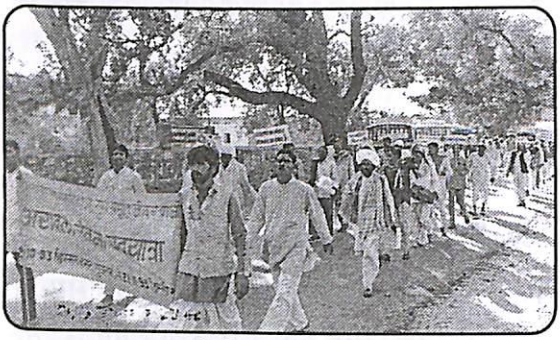

अरावली चेतना यात्रा का दृश्य

इससे साबित होता है कि यह अभियान केवल सरिस्का को बचाने का ही नहीं था, बल्कि इसका उद्देश्य समूची अरावली को बचाने का था, जो निश्चय ही सराहनीय था। हां सरिस्का के बचाने हेतु किए गए आंदोलन-संघर्ष का परिणाम भगाणी-तिलदह के पुनर्जीवन के रूप में सामने आया जो निस्संदेह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। लेकिन यह भी सच है कि इस तरह के अनवरत किए जाने वाले प्रयास निश्चित ही कुछ नये बदलावों के जन्मदाता होंगे जो समाज की तकदीर बदलने में सहायक तो होंगे ही, प्रेरणा स्रोते भी बनेंगे। इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता।

पड़ोसी गांवों के लिए भी शरण स्थली बना मांडलवास

सरिस्का के जंगल के अंदर बसे मांडलवास की बसावट लगभग चार सौ वर्ष पुरानी मानी जाती है। यह राजौर ग्राम पंचायत के तहत आता है। इसके तीन ओर सरिस्का का जंगल है और एक हिस्से में गांव की जमीन आती है। यह गांव अरावली पर्वत शृंखला की ढालूनुमा पहाड़ियों से घिरा है। यहां पहुंचने के लिए अलवर से पहले राजगढ़, टहला और उसके बाद पहुँच मार्ग के जरिये जाना पड़ता है। मुख्यालय से इसकी दूरी लगभग 70 किलोमीटर है। इसकी पृष्ठभूमि के बारे में गांव वालों का मानना है कि राजचन्द नामक व्यक्ति के नाम पर इसका नाम राजौर पड़ा है। मांडलवास की पहाड़ियों की आकृतियां मांडलनुमा होने के कारण भी इसे मांडलवास नाम से पुकारा जाने लगा। पहले यहां गुर्जर समाज के लोग रहा करते थे किन्तु किसी कारण बाद में वे गांव छोड़ कर चले गये। इसके बाद मीणा जाति के लोगों ने मांडलवास को बसाया। गांव में सभी लोग मीणा समुदाय से हैं जो चार गोत्रों से सम्बन्ध रखते हैं।

गांव में लगभग 100 परिवार हैं। गांव के लोगों की जीविका का मुख्य साधन पशुपालन व खेती है। यहां के प्रत्येक परिवार के पास कम-ज्यादा, थोड़ी-बहुत जमीन तो है ही। प्रत्येक परिवार के हिस्से में औसत 1 से 1.5 हैक्टेयर भूमि है। लोगों की आर्थिक स्थिति भी कोई खास नहीं। बल्कि असलियत है कि वे जितनी कमाई करते हैं, उतनी ही परिवार में खप जाती है। गांव पूरी तरह सुविधाहीन था। वहां न कोई बस सेवा थी और न बिजली की सप्लाई। संरक्षित क्षेत्र सरिस्का में होने के कारण यहां ऐसी सुविधाओं की आशा करना ही बेकार था। गांव में घरेलू आवश्यकता का सामान लेने 10-12 किलो मीटर दूर टहला या किशोरी जाना पड़ता था।

सन् 1984-85 के चार साल के अकाल ने मांडलवास गांव की कमर ही तोड़ दी थी। पशुओं के लिए चारा न रहा न खेती के लिए पानी। गांव में लाचारी, बेकारी,

बीमारी का तांडव था। आखिर हार मान कर जवान लोग कमाने-खाने दिल्ली-अहमदाबाद जैसे महानगरों में चले गये। गांव में 2-3 कुओं को छोड़ कर सभी सूख गये थे। मवेशी भी भूखे-प्यासे मरने लगे। लोगों ने अपने-अपने मवेशियों को भगवान भरोसे छोड़ दिया था। इसी दौरान 1984-85 में तरुण भारत संघ ने गोपालपुरा में जल संरक्षण का काम शुरू किया और इस काम की चर्चा चारों ओर फैली।

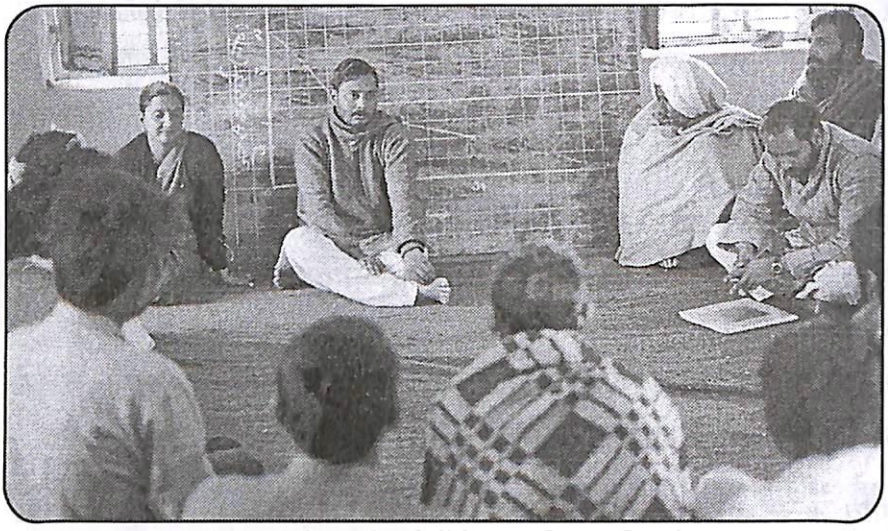

मांडलवास के कार्यकर्ताओं के साथ विचार-विमर्श

इसी दौरान मांडलवास के बिरदू व जगदीश गोपालपुरा में अपनी रिश्तेदारी में आए। यहां उन्होंने तरुण भारत संघ के पानी के काम की चर्चा सुनी। उसके बारे में शाम को कऊ पर हुक्का पीते समय उन्होंने अपने मन की जिज्ञासा प्रकट की। जोहड़ वाली बात जब लोगों के सामने रखी तो गोपालपुरा के मांगू पटेल, भगवाना, महादेव ने तरुण भारत संघ के बारे में परिचय देते हुए बताया कि यह संस्था पानी के काम में चौथाई सहयोग गांव का लेती है। हमने पहले भी काम करवाया है। पहले मानसून में चबूतरा वाला जोहड़ भर जाने पर सूखे तीन कुओं में पानी आ गया। यह बात सुन कर जगदीश पढ़्या व बिरदू की जिज्ञासा और अधिक बढ़ी और उनको आशा की किरण दिखाई देने लगी। सुबह उन्होंने जोहड़ के काम को देखा तथा गोपालपुरा से अपने रिश्तेदार मांगू-भगवाना को

लेकर भीकमपुरा तरुण भारत संघ कार्यालय आये। यहां उनकी राजेन्द्र सिंह जी व सत्येन्द्र सिंह जी से बातचीत हुई। बातचीत में तय हुआ कि आप दोनों तीन दिन बाद यहां आना। हम लोग स्वयं आपके साथ मांडलवास चलेंगे। फिर तीन दिन बाद आकर बिरदू व जगदीश ने अपने साथ राजेन्द्र सिंह को ले जाकर मांडलवास का अवलोकन करवाया।

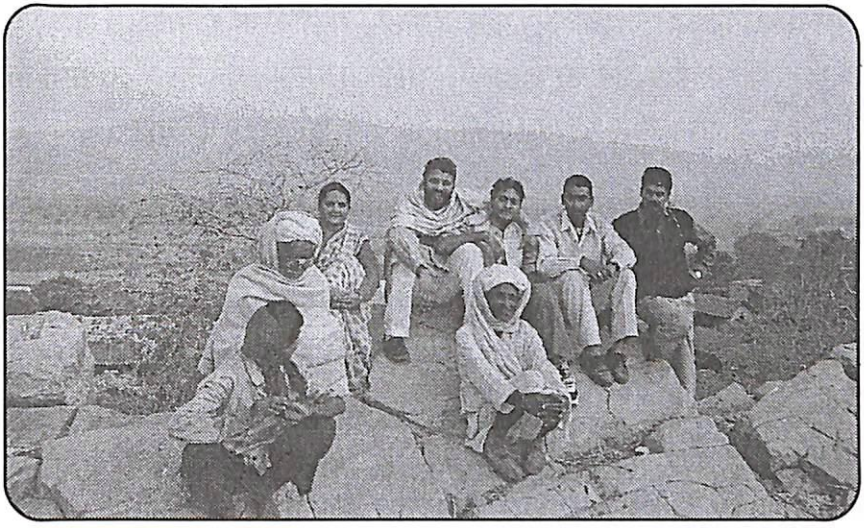

भोमिया वाले जोहड़ के पास बिरदू बाबा और जगदीश पढ्या के साथ बैठे राजेन्द्र सिंह

राजेन्द्र सिंह जी ने दो दिन रह कर पूरे गांव के मोटे तौर पर भौगोलिक-आर्थिक-सामाजिक पक्ष को समझा। उस समय गांव में केवल एक पुराना जोहड़ व एक छोटी सी पक्की दीवार थी जो रख -रखाव के अभाव में बेकार हो चुकी थी। बरसात के पानी का अधिकतर हिस्सा नालों के द्वारा बह कर गांव से बाहर नीचे की ओर जाकर बेकार चला जाता था। गांव की इस बदहाली के दौर में वहां से पलायन हो चुके लोगों का वापिस लाना तरुण भारत संघ के लिए चुनौतीपूर्ण काम था।

संस्था सचिव राजेन्द्र सिंह जी ने इस विषम परिस्थितियों के बावजूद मांडलवास को अकाल से सदा के लिए छुटकारा दिलाने की ठान ली। इस काम को करने के लिए उनके लिए लोगों का विश्वास जीतना जरूरी था। इस हेतु उन्होंने सबसे पहले इस गांव में शिक्षा व स्वास्थ्य का कार्यक्रम शुरू किया। मुन्ना लाल शर्मा ने

इस गांव में बच्चे पढ़ाने का काम और गजराज सिंह जी व रामस्वरूप गुर्जर ने मांडलवास को केन्द्र बना कर इस क्षेत्र में स्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया। इससे संस्था के प्रति लोगों का विश्वास गहराता गया और लोग एक जाजम पर बैठने लगे। तब तरुण भारत संघ ने अपनी धरातल की सोच के आधार पर गांव के बुजुर्गों के बीच जाने का मन बनाया। गांव के लोगों के साथ जोहड़ बनाने की पुरानी परम्पराओं पर चर्चा की। गांव के कुछ युवा लोगों को गोपालपुरा ले जाकर जोहड़ों की कार्य पद्धति को दिखाया, समझाया। संस्था की यह शैली गांव को विश्वास में लेकर उनके सहयोग से पानी का काम शुरू करने की थी।

इस तरह तरुण भारत संघ और मांडलवास के बीच संवाद का जो क्रम प्रारम्भ हुआ, कुछ ही समय में उसका सकारात्मक नतीजा आया। 20 सदस्यों की एक ग्राम सभा का गठन किया गया। इसमें प्रत्येक परिवार की हिस्सेदारी आवश्यक थी। ग्राम सभा को सशक्त बनाने हेतु गांव के प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए कानून एवं दस्तूर बनाए गये। पूरा गांव उनका पालन करेगा तथा आपसी संघर्षों के निपटारे के लिए ग्राम सभा का दायरा भी तय किया गया।

मांडलवास की बिगड़ती तस्वीर को बदलने के लिए सबसे पहला जरूरी काम जल संरक्षण करने का था। संस्था के सचिव राजेन्द्र सिंह जी की सोच थी कि बरसात में बेकार बह कर जाने वाला पानी जल संरचनाओं में रुकने से जमीन के पेट में जाएगा। पानी से जमीन का पेट भरने से यहां समृद्धि स्वतः आ जाएगी। ऐसा गांव वालों का भी मानना था इसलिए मांडलवास के लोगों ने तरुण भारत संघ के सहयोग से सबसे पहले धाणका वाले जोहड़ व गाँव वाले जोहड़ का काम शुरू किया। इसके बाद सरसा वाला, तिबारी वाला जोहड़। इस प्रकार धीरे-धीरे जोहड़ों का काम शुरू हुआ। इसके प्रभाव को देख यहां के लोगों ने हर वर्ष में एक नया जोहड़ बनाने का संकल्प लिया। इस प्रकार वे एक के पीछे एक जोहड़ बनाते चले गये। सबसे आखिर में बना भोमिया जी वाला बांध। यह बांध इस गांव का ही नहीं बल्कि इस क्षेत्र का सबसे बड़ा बांध रहा। नतीजन मांडलवास जल संरक्षण का प्रतीक बन गया।

नीचे वाले जोहड़ की ओर इशारा करते महादेव शर्मा

इसमें सारी तकनीकों का इस्तेमाल गांव के देशी परम्परागत ज्ञान के आधार पर किया गया। आवश्यक सामान, कुशलता और परिश्रम जिसकी जोहड़ बनाने में जरूरत होती है, की व्यवस्था स्थानीय स्तर पर की गयी। शुरुआती आर्थिक एवं यांत्रिकी मदद का प्रबन्ध गांवों के लोगों ने स्वयं ही बड़े पैमाने पर किया क्योंकि इससे गांव के अधिकांश लोग पहले से ही पूर्ण रूप से परिचित थे। इस प्रकार मांडलवास में जोहड़ निर्माण को लेकर ग्रामीणों में समझ विकसित हुई और उससे अन्य गांवों के लोगों ने बहुत कुछ सीखा।

जोहड़ों के रख-रखाव हेतु मांडलवास में एक ग्राम कोष बनाया गया है। इसमें प्रत्येक परिवार द्वारा एकत्रित अनाज साल में दो बार साख (फसल) पर ग्राम सभा द्वारा तय किए नियम अनुसार जरूरतमंद को दिया जाता है। इस एकत्रित कोष को सर्वसम्मति से कॉमन (सार्वजनिक) कामों में खर्च किया जाता है।

इस प्रकार पूरे गांव में जगह-जगह जल संरचनाओं के बनने व जंगल संरक्षण से जहां धरती का पेट पानी से भरा, वर्षों से सूखे पुराने कुओं में फिर से पानी आया और वहां समूचा इलाका फिर से हरियाली में बदल गया। चारों तरफ हरियाली लौटने से जंगली जानवर-पक्षियों से सूना जंगल फिर से गुंजायमान होने लगा। अब मांडलवास में लोग तीन-तीन फसलें लेने लगे हैं। उनके आर्थिक स्तर में

सुधार होने लगा है। मांडलवास की लछमा देवी कहती हैं कि पहले हम औरतें पूरे दिन पानी के इन्तजाम में ही लगी रहती थीं। आज पानी आने से हम घर के दूसरे कामों को भी देखती हैं।

तरुण भारत संघ ने इस गांव में शिक्षा से ही काम शुरू किया। आज इस गांव में सब बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं। इस गांव में पहले लोग अपनी बेटी का रिश्ता करने से कतराते थे। अब पानी व शिक्षा होने से इस गांव में लड़कों के टीके भी आने शुरू हो गये हैं। इस प्रकार पानी संरक्षण के काम से मांडलवास गांव का भूगोल ही बदल गया। भगाणी नदी की एक धारा इसी मांडलवास गांव से बहना शुरू हुई है। इससे मांडलवास में वर्षों पुरानी छायी लाचारी, बेकारी, बीमारी स्वतः ही खत्म हो गयी। खोयी किस्मत वापिस लौटने से लोग खुद को खुशहाल व गौरवान्वित महसूस करने लगे हैं। 2001-2 के अकाल के दौर में मांडलवास के पड़ोसी गांवों जैतपुर, गोपालपुरा, किशोरी, सीलीबावड़ी आदि के लोगों ने अपने पशुओं को अकाल से बचाने हेतु चारे-पानी के लिए मांडलवास गांव में आश्रय लिया। इस प्रकार आज मांडलवास पानी व जंगल संरक्षण के काम करने से अकाल-दुकाल में पड़ोसी गांवों की शरण स्थली माना जाता है।

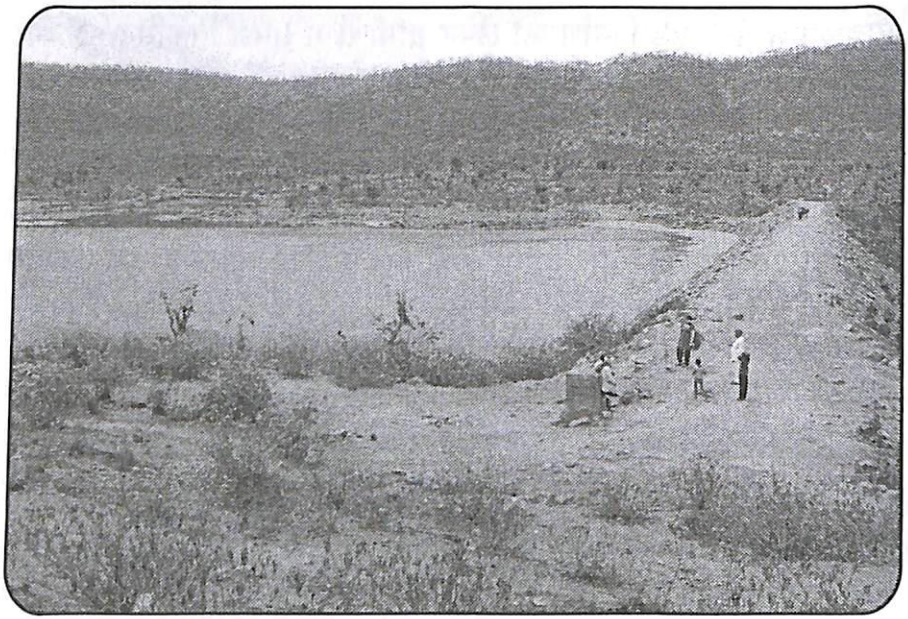

बदली मथुरावट की भी तकदीर

राजौर गढ़ ग्राम पंचायत के अधीन यह गांव सरिस्का के बफर जोन के तहत आता है। 40-45 घरों वाले इस गांव में आज राजौर से आकर यहां बसे बलाई व मीणा ही अधिक हैं। कहा जाता है कि इसको भूरियावास के पास खैरटा के गंगाराम के अलावा दूसरे गूजर परिवारों ने बसाया था। लेकिन आज वे इसमें नहीं रहते। उस समय चूंकि यह हरियाली से पूर्ण था और अकाल का दौर चल रहा था, तब यह परिवार यहां आकर बसे थे। समय बदला और गूजर परिवार यहां से वापस चले गए। कुछ का कहना है कि जब अलवर के महाराजा जयसिंह ने इस इलाके को संरक्षित वन क्षेत्र के रूप में घोषित किया तो गांव हटाने पर जोर दिए जाने पर गूजर परिवार पहाड़ी के उस पार बसे मान्याला गांव जाकर बस गए। लेकिन बलाई व मीणाओं ने गांव नहीं छोड़ा। तब से अपनी अलग-अलग ढाणियों में यह लोग रहते हैं। ये लोग तरुण भारत संघ से यह बहुत ज़्यादा प्रभावित हैं। कारण उसने इन्हें वहां बांध और जोहड़ बनाकर जीने का सहारा दिया। 1985 में अकाल ने यहां के लोगों की कमर ही तोड़ दी थी, पहाड़ियां नंगी

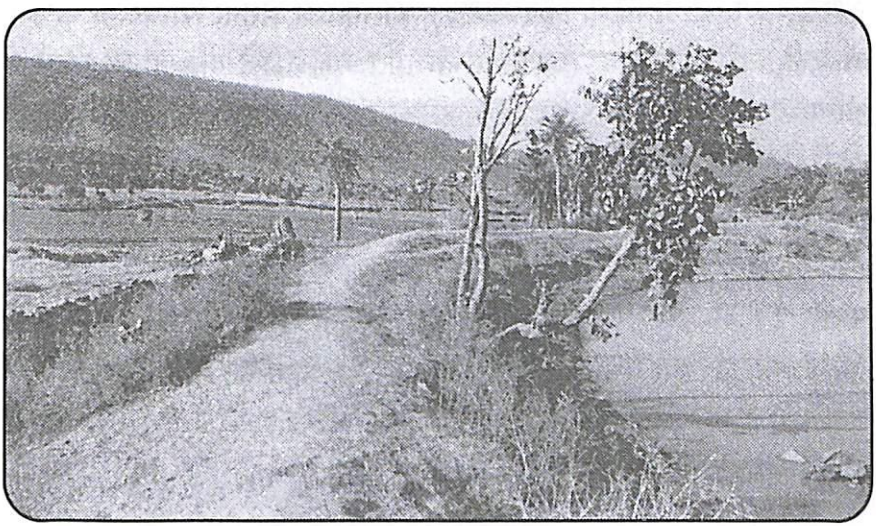

मथुरावट में बना बांध

थीं, कुएं सूख चुके थे, पशुओं के पीने-नहाने के पानी-चारे की बात दीगर है, इंसानों को पीने का पानी तक नहीं था। उस हालत में गांव के अधिकांश परिवारों में से कुछ सड़क किनारे बसे गांवों में रहे, कुछ किशोरी में तथा कुछ रोजी-रोटी की खातिर दिल्ली, जयपुर व सूरत-अहमदाबाद आदि नगरों में जाकर मेहनत-मजदूरी करने लगे।

इस दौर में गांव में ही रह रहे परिवारों का संपर्क तरुण भारत संघ से हुआ। उसकी मदद से गांव वालों ने श्रमदान करके 1987 में गांव की पश्चिम दिशा में पहला छोटा सा बांध बनाया। बांध में पानी रुकने का नतीजा कुछ समय बाद कुओं में पानी आने के रूप में सामने आया। इससे गांव वालों में खुशी की लहर दिखाई दी। उनमें आशा की किरण जगी और फिर बांध-दर-बांध, जोहड़-दर-जोहड़ बनाते गए। कुओं में खूब पानी आया, नंगी पहाड़ियां हरी-भरी नजर आने लगीं। नौकरी के लिए गांव से बाहर गए लोग वापस आए। फसल कई गुणा बढ़ी, पशुओं के लिए चारे की समस्या खत्म हुई, दूध का उत्पादन बढ़ा, आय में बढ़ोत्तरी हुई और अंधियारी बदहाल जिंदगी में खुशहाली का सवेरा आया और समृद्धि उनके चरण चूमने लगी। पढ़ाई से दूर रहने वाले लोग संस्था के कहने पर संस्था द्वारा खोले स्कूल में अध्यापक बनवारी लाल सैन के पास अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए भेजने लगे। महिला चेतना शिविर के माध्यम से जल, जंगल, जमीन के संरक्षण के प्रति महिलाओं को जाग्रत करने में तरुण भारत संघ के इस प्रयास की सफलता इसी से परिलक्षित हुई कि कुछ ही दिनों में महिलाएं यह पूरी तरह समझ गईं कि यह हमारी सम्पत्ति है। यदि ये बचे रहे तो हमारा जीवन भी सुरक्षित है। आने वाले वर्षों में इस हेतु महिलाओं द्वारा की गई पदयात्राएं और संघर्ष में भागीदारी उनकी जागृति का जीता-जागता प्रमाण है। आज मथुरावट के लोग कहते हैं कि सच कहा जाये तो हमारी तकदीर बदलने का श्रेय तरुण भारत संघ को ही जाता है। यदि संघ गांव में न आता तो न पानी होता न हम गांव में होते, न हमारी खेती होती, न हमारा पशुधन होता। सब कुछ संघ की बदौलत है।

छींड़ में राजौर की कजोड़ी माई की भूमिका

राजौर के इतिहास के बारे में भिन्न-भिन्न दंत कथाएं प्रचलित हैं। कोई इसे राजचन्द नामक व्यक्ति के नाम पर बसा बताते हैं तो कोई बड़गूजर राजाओं द्वारा बसा बताता है जो पहले पारानगर के नाम से जाना जाता था। कुछ का मानना है कि लगभग एक हजार वर्ष पहले इस क्षेत्र के सबसे बड़े पशुपालक राजू गूजर के नाम पर इसे बसाया गया। उसके पास एक लाख से भी अधिक गायें थीं। उसे इस इलाके के राजा की गुलामी और पराधीनता स्वीकार न करने की वजह से सरिस्का का जंगल छोड़कर चम्बल की शरण में जाना पड़ा था। बाद में उसके बेटे कारसदेव ने यहां के राजा को परास्त कर राजौर पर कब्जा किया था। कारसदेव को इस समूचे इलाके में गोधन व पर्यावरण के रक्षक के रूप में पूजा जाता है। वे बुन्देलखण्ड ही नहीं, राजस्थान की लोक कथाओं के नायक भी हैं। कारसदेव के बारे में आगे विस्तार से दिया जा रहा है। राजौर सरिस्का के कोर क्षेत्र में आता है। कांकवाड़ी के किले के बारे में कहा जाता है कि यह एक हजार साल पहले राजौर की राजधानी का केन्द्र रहा था। इसके बारे में सरिस्का के जानकारी पत्रक में भी विवरण दिया गया है।

राजौर में मुख्यतः मीणाओं की आबादी ज़्यादा है। उसके बाद आबादी के हिसाब से क्रमशः कुम्हार, रैगर, ब्राह्मण और खाती हैं। गौरतलब है कि इस गांव में कुबाण्या वाला जोहड़ का शिलान्यास और उसके निर्माण के बाद उसका उद्घाटन भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख श्री कुप्प सी. सुदर्शन जी द्वारा किया गया। इस गांव की कजोड़ी देवी अपने जल संरक्षण, वन संरक्षण, महिला उत्थान व सामाजिक कल्याण हेतु किए गए कार्यों के कारण समूची छींड़ में 'माई' के नाम से जानी जाती थीं। उनका भगाणी नदी के पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां उनके बारे में जान लेना बहुत जरूरी है।

कजोड़ी माई भगाणी नदी के जलागम क्षेत्र के राजौर गांव के पटेल (मुखिया) जगदीश मीणा की पत्नी थी। साधारण गृहिणी की भूमिका निभाते हुए वह अपना

जीवन निर्वाह कर रही थी। उनका गांव सरिस्का के बफर जोन में आता है। अरावली की पहाड़ियों के मध्य में स्थित यह इलाका आधुनिक विकास की चकाचौंध से एकदम दूर था। लेकिन समाज में व्याप्त कुरीतियों-अशिक्षा, शराब के बढ़ते प्रचलन, जंगलात विभाग के अधिकारियों के जोरो-जुल्म, गांव वालों में फूट डालने के प्रयास तथा इलाके में दिन-ब-दिन गहराते पानी के संकट से कजोड़ी माई बेहद दुखी थी। उसका दिल टूट रहा था। वह घूंघट में ही मन-मसोस कर रह जाती थी और बड़ों के लिहाज से वह उन बुराइयों की चर्चा मौका मिलने पर अपने पति जगदीश मीणा से जरूर करती थी कि आप गांव के पटेल (मुखिया) हैं, आपको तो इस बारे में जरूर सोचना चाहिए। लेकिन जगदीश पटेल कजोड़ी देवी को यह कहकर कि तुम्हे अपने घर-बार के बारे में सोचना है, दुनियादारी से तुम्हें क्या मतलब? पति की बात सुन वह चुप रह जाती। आखिर वह करती भी क्या ? क्योंकि वह ठहरी गांव की एक अनपढ़ महिला। और फिर वह जुट जाती अपने रोजमर्रा के कामों में। लेकिन उसके दिल में इन सब बुराइयों को दूर करने की एक ललक थी, जिसे मौका, सहयोग और विश्वास की कमी के कारण वह पूरा नहीं कर पा रही थी।

सन् 1999 में तरुण भारत संघ की महिला कार्यकर्ता भागीरथी राठौड़ की सक्रिय पहल से तो इस क्षेत्र का कायापलट ही हो गया। भागीरथी ने सर्वप्रथम राजौर गढ़ क्षेत्र में महिला समूह बनाने शुरू किए थे। इस दौरान उसने सबसे पहले मांडलवास में एक महिला समूह बनाया, जिसकी अध्यक्ष लछमा देवी को बनाया गया।

इसके बाद लछमा देवी व भागीरथी बहिन ने राजौर में भी एक महिला समूह बनाया। राजौर की कजोड़ी देवी ने उसमें सक्रिय भागीदारी निभाई। कजोड़ी देवी अनपढ़ जरूर थी, लेकिन उसके मन में कुछ करने का जज्बा था। भागीरथी बहिन को कजोड़ी माई में छिपी प्रतिभा का आभास हो गया था। उसे देखकर भागीरथी बहिन ने उसे अध्यक्ष बनाने का निर्णय कर लिया और फिर सबकी सहमति से कजोड़ी देवी को महिला समूह का अध्यक्ष बना दिया गया। उसके बाद भागीरथी जब भी छींड़ में जातीं, कजोड़ी माई के घर ही रुकतीं और कजोड़ी

माई व भागीरथी बहिन के बीच घर परिवार व गांव से लेकर देश-दुनिया तक की बातों पर भी चर्चाएं होने लगतीं। कजोड़ी माई और भागीरथी बहिन भाई साहब राजेन्द्र सिंह जी के साथ ''राष्ट्रीय जल-यात्रा'' में भी साथ-साथ ही रहीं और देश भर की यात्रा की।

राष्ट्रीय जल यात्रा के दौरान कजोड़ी माई, भागीरथी बहिन, बीच में हैं राजेन्द्र सिंह व अन्य

कजोड़ी माई जब 2 अक्टूबर को तरुण भारत संघ के स्थापना दिवस पर भीकमपुरा आयी, तो उसने आश्रम परिसर को देखा। यहां के लोगों के आचार-विचार उसे वैसे ही लगे जैसे भागीरथी बहिन ने उसे बताया था। कजोड़ी माई के गांव के नान्छा सरपंच, मूलचन्द, रमेश व कजोड़ संस्था से पहले से ही जुड़े हुए थे। इसलिए कजोड़ी माई को यहां आने में कोई परेशानी नहीं हुई। नान्छा सरपंच का यहां बहुत पहले से ही आना-जाना था। कजोड़ी का मोट्यार जगदीश नान्छा का चचेरा भाई था। लेकिन जब जगदीश ने कजोड़ी से कहा कि तुम अपने गांव में रह कर ही महिला समूह से जुड़े काम करो तुम्हें भीकमपुरा वगैरह जाने की जरूरत नहीं हैं। इस पर नान्छा सरपंच व मूलचन्द ने जगदीश को समझाया कि वहां जाने में कोई परेशानी नहीं है। वहां सब लोग एक परिवार की तरह से रहते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे कजोड़ी माई के कदम भीकमपुरा की तरफ बढ़ने शुरू हो गये।

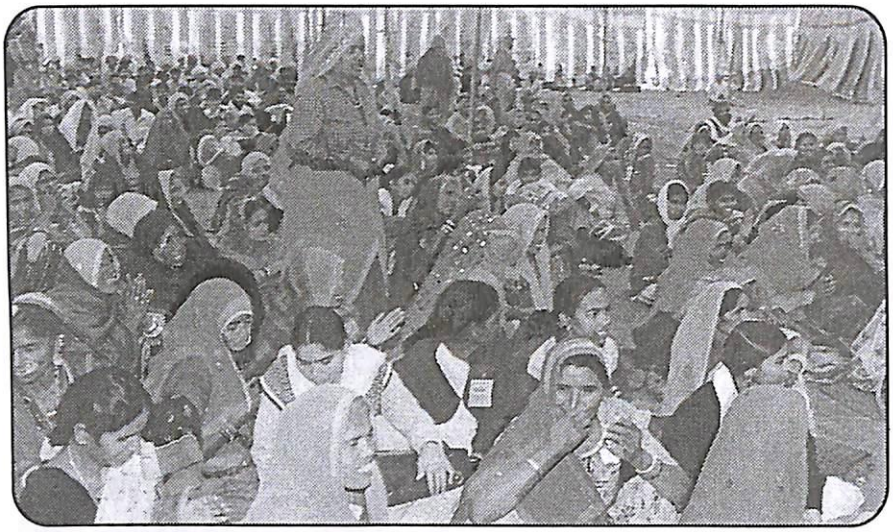

तरुण भारत संघ के भीकमपुरा स्थित कार्यालय में महिला समूह में
अपने विचार व्यक्त करते हुए कजोड़ी माई

2 अक्टूबर को भीकमपुरा स्थित कार्यालय पर जब मीटिंग में कजोड़ी को मंच पर बोलने का मौका दिया गया, तब वह खुशी से फूली न समायी। मीटिंग में कजोड़ी ने अपने महिला समूह की प्रगति रिपोर्ट पेश करते हुए बताया कि हमारा महिला समूह कुबाण्या के जोहड़ को बनाने की तैयारी में है। जोहड़ बनने और उसके प्रभावों के बारे में कजोड़ी ने इस ढंग से बताया कि राजेन्द्र सिंह जी को दूसरे दिन ही साइड देखने हेतु गोवर्धन जी व जगदीश जी वाली अपनी तकनीकी टीम को भेजना पड़ा। कजोड़ी के इस भाषण को सुनकर उपस्थित सभी लोग अचम्भित रह गये। लेकिन छींड़ के लोग शर्मिन्दा हो गये कि हमारे गांव की औरत स्टेज पर चढ़ कैसे गई? घर पर भी लोग शिकायत लेकर गये, लेकिन अब उनकी शिकायतों का असर किसी पर नहीं होने वाला था क्योंकि राजेन्द्र सिंह का सीधा सम्पर्क कजोड़ी के परिवार से था और कजोड़ी माई ने भी संस्था के सभी कार्यकर्ताओं को अच्छी तरह से जांच-परख लिया था।

उसके बाद से ही कजोड़ी माई ने संस्था के साथ जुड़ कर भागीरथी बहिन के साथ पूरी छींड़ में महिला समूह बनाने की मुहिम शुरू कर दी। उसने हर गांव में एक-एक, दो-दो महिला समूह बनाने की ठान ली। उसकी इस प्रक्रिया से महिलाएं

अपना समय निकाल कर मीटिंगों में आने लगीं। इस प्रकार धीरे-धीरे उनका संगठन बनने लगा। फिर कजोड़ी माई ने मीटिंग में बचत के साथ जल, जंगल पर चर्चा करना शुरू किया। वैसे जल संरक्षण का छोटा-मोटा कार्य धीमी गति से पहले से ही छींड़ में चल रहा था। लेकिन जब कजोड़ी माई ने महिला समूह से अपने गांव में कुबाण्या वाला जोहड़ बन जाने के बाद, पूरी छींड़ में महिला समूह द्वारा जोहड़ बनाने व जंगल बचाने का काम करने की बात की, तो उसके बाद यह कार्य एक अभियान की तरह चल पड़ा। जंगलात विभाग के कर्मचारी गांव के लोगों से जो महीनेदारी लेते थे, जब से कजोड़ी माई ने छींड़ में महिलाओं का संगठन बनाया, तब से न केवल कर्मचारियों की रिश्वत रुकी, बल्कि जल, जंगल संरक्षण का काम भी तेजी से बढ़ने लगा। पहले औरतें पूरे दिन पानी, घर के काम व ईंधन लाने में ही लगी रहती थीं। आज वे बच्चों को स्कूल भेजती हैं, खेती में हाथ बंटाती हैं। इसके अलावा वे हर महीने एक साथ बैठकर अपने गांव के जल-जंगल की अच्छाई-बुराई के बारे में भी सोचती हैं, कुछ करने का प्रयास करती हैं।

कजोड़ी माई ने महिला समूह द्वारा जोखिम भरे कार्य भी किये। एक बार हैण्डपम्प लगाने वाली सरकारी गाड़ी गांव में आयी। वह सीधी तत्कालीन सरपंच के घर के पास रुकी। इसकी भनक कजोड़ी माई को पहले ही लग गयी थी कि कल 9-10 बजे के बीच हैडपम्प लगाने वाली सरकारी गाड़ी आयेगी और सरपंच के यहां हैंडपम्प लगेगा। कजोड़ी माई महिला समूह की औरतों को साथ लेकर सड़क पर आ बैठी। जैसे ही गाड़ी आयी, औरतों ने गाड़ी को घेर लिया और कहा कि हैंडपम्प सरपंच के यहां नहीं, सार्वजनिक स्थान पर लगेगा। सरकारी कर्मचारियों ने सरपंच को बुलाया। सरपंच ने कहा कि यह ऊपर का आदेश है। इसको रोका तो आप लोग कानून के चक्कर में फंस जाओगी। इस पर कजोड़ी माई ने कहा कि आदेश देने वाला भी आयेगा, तब भी यह हैंडपम्प सरपंच के यहाँ नहीं बल्कि सार्वजनिक स्थान पर ही लगेगा। पूरी रात भर औरतें सरकारी गाड़ी को घेर कर बैठी रहीं। सुबह उपखण्ड अधिकारी, तहसीलदार राजगढ़ से आया। काफी समझाने के बाद भी महिला समूह की औरतें टस से मस नहीं हुईं।

आखिर जीत उन्हीं की हुई। ऊपर का आदेश निरस्त हुआ और जिस सार्वजनिक स्थान पर कजोड़ी माई ने चाहा, हैंडपम्प वहीं लगा। कजोड़ी माई के नेतृत्व की यह पहली विजय थी।

पूरी छींड़ में शराब का प्रचलन दिन-ब-दिन बढ़ रहा था। इससे सूर्यास्त के बाद कोई बहिन-बेटी शौच जाने में भी कतराती थी। शराब के नशे में असामाजिक तत्व आम शरीफ लोगों को परेशान करते थे। इस प्रकार दिनों-दिन पूरी तरह माहौल बिगड़ता जा रहा था। इस दौरान उसने पूरी छींड़ की महिलाओं को नशा मुक्ति आन्दोलन हेतु तैयार किया। यह भी एक जोखिम भरा काम था। लेकिन कजोड़ी माई की रणनीति, दूरदर्शिता, अदम्य साहस और निडरता के आगे सब बौने साबित हुए। उसने सबसे पहले अपने गांव राजौर के शराब के ठेके को हटवाया। फिर गढ़ गांव में से भी ठेका हटवाया और इस तरह पूरी छींड़ में शराब के ठेके बन्द होते चले गए। ठेकेदारों ने उन्हें काफी धमकियां भी दीं। लेकिन कजोड़ी माई के आगे ठेकेदार की धमकियां नाकाम साबित हुईं और पूरी छींड़ शराबमुक्त हो गयी।

जंगलात महकमे की बात करें। वहां के कर्मचारी पहले जंगल काटने के एवज में महीनेदारी लेते थे। पूरी छींड़ में महिला समूह बन जाने व जंगल के प्रति उनके सक्रिय होने पर महिलाओं ने निर्णय लिया कि अब जंगलात के कर्मचारियों को रिश्वत नहीं देंगे और कोई भी व्यक्ति जंगल नहीं काटेगा। इसके लिए पूरे नियम दस्तूर बने। इससे जंगलात विभाग में बौखलाहट मच गई। एक बार अगर कोई रिश्वत लेता तो उसकी शिकायत उच्च अधिकारियों तक पहुंच जाती। इसी प्रकार कजोड़ी माई पानी व जंगल से सम्बधित कोई बैठक करतीं और उसमें बुलाने पर भी कर्मचारी अगर नहीं आते, तो उस कर्मचारी की खैर नहीं होती थी। हालत यह हो गई कि जब भी कजोड़ी माई दूसरे गांवों में जातीं व कर्मचारियों को कहीं भी मिल जाती तो वे उससे दुआ सलाम करे बिना नहीं जाते थे।

इस प्रकार कजोड़ी माई ने अपनी छींड़ में ही नहीं, भाई साहब के साथ भी पूरे देश में जलयात्रा की। आगे जाकर वह जल, जंगल संरक्षण के सम्मेलनों में हिस्सा

लेने लगीं। वह अपने किये गये कामों को बड़े प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करतीं। उसे सुन बड़े-बड़े अधिकारी अचम्भित रह जाते। इस पूरी जल यात्रा में भागीरथी बहिन भी उसके रहीं वे दोनों मिलजुल कर एक-दूसरे को वैचारिक सम्बल देती थीं। अपना पता मांगने पर कजोड़ी माई कहती कि भाई मुझे पढ़ना-लिखना तो आता नहीं है, मैं तो सीधा काम करना जानती हूं। आप स्वयं लिखें तो मैं बता सकती हूं अपना पता।

इस प्रकार महिला समूह ने कजोड़ी माई के नेतृत्व में पूरे छींड़ में जल, जंगल संरक्षण के कामों से सकारात्मक प्रभाव डाला। इसी प्रकार दबकन गांव की गुमान कंवर व गढ़ गांव की ममता सैन ने भी दबकन व गढ़, मांडलवास, राजौर, मथुरावट, कांकवाड़ी गांवों में महिला संगठन, महिला-समूह व महिला चेतना के साथ ही साथ जल-संरक्षण व जंगल-संरक्षण का काम पूरी सक्रियता से किया।

इसका नतीजा यह हुआ कि पशुओं के लिए चारे-पानी की किल्लत दूर हुई, पशुओं का दूध बढ़ा और अब तो छींड़ में सड़क भी बन गई है। अब लड़कों के साथ-साथ लड़कियां भी स्कूल जाने लगी हैं। अब जिसके पास जितने पशु हैं, खेती है, उसी अनुपात में उसकी आय भी बढ़ी है। आज पूरी छींड़ समृद्ध है, खुशहाल है। आज कजोड़ी माई इस संसार में नहीं हैं, लेकिन कजोड़ी माई के किये हुए काम सदियों तक जिन्दा रहेंगे। पूरी छींड़ ही नहीं, पूरा क्षेत्र व तरुण भारत संघ कजोड़ी माई को कभी नहीं भुला सकेगा। गौरतलब है कि किसी भी काम को करने का जज्बा अगर मन में हो तो लाख बाधाएं आने पर भी आदमी को आगे बढ़ने से नहीं रोक सकतीं। यह सब कर दिखाया एक अनपढ़ और घूंघट में रहने वाली ग्रामीण महिला कजोड़ी माई ने।

गोधन के रक्षक लोकदेवता कारसदेव की गाथा

-कै भये कनैया, कै भये कारस, जिन्नें गइयन की राखी लाज हो।...

हम राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में प्रचलित लोककथाओं के नायक कारसदेव के बारे में बता रहे हैं जो असल में चरागाही संस्कृति के प्रतीक तो हैं ही, पर्यावरण की रक्षा के सर्वमान्य देव की तरह पूज्य और प्रतिष्ठित भी हैं। लोक आख्यान में उनका इस तरह बखान किया गया है। असल में राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश में गूजर जाति के लोग पशुपालन का काम सदियों से करते आ रहे हैं। इन्हीं गूजरों में राजस्थान के अलवर जिले के राजौरगढ़ के एक राजू गूजर का नाम आता है जिसके कुल में कारसदेव का अवतरण हुआ। गोधन व पर्यावरण के रक्षक कारसदेव को लोकदेवता मान लिया गया है। यहां प्रस्तुत है कारसदेव की गाथा।

कहावत है हाथियों के बढ़ने से राजा कहा जाता है और पशुधन के बढ़ने से गढ़राजौर के गूजर। एक दिन पिता राजू गूजर से उसकी बेटी ऐलादी ने कहा कि मथुरा वन के बीच पशुओं का एक बाड़ा बंधवा दो। पिता बोले कि किसके भरोसे बाड़ा बंधवा दूं, मेरे यहां कोई छोटा बेटा नहीं है। यह सुनकर बेटी बोली हम ही तुम्हारे छोटे बेटे हैं और हम ही कुटुम्ब-परिवार। मेरे पिता तुम मेरे लिए मथुरा वन में पशुओं का बाड़ा बनवा दो।

हंतियन बाढ़ौ राजा कइये राजा पिरथी राज हो ओ।
भुंवरन बाढ़ौ गूजर कइये जैसें गढ़राझौर हो ओ।
बेलै ऐलादी भुवानी अपनें बाबुल सें रई बतराय हो ओ।
मोरे नोंनें बाबुल खिरक तो बंदा देव मथुरा मांझे हार हो ओ।
बोलै गूजर कैसी करौं ऐलादी सें बतराय हो ओ।
कौना के भरोसे खिरक बंदा देउं, मथुरा मांझे हार हो ओ।

बोलै ऐलादी भुमानी राजू सें रई बतराय हो ओ।
हम दूं तो तुमाये हलके बारे हमईं कुटुम परिवार हो ओ।
मोरे बाबुल खिरक तो बंदा देव मथुरा मांझे हार हो ओ।

शुभ घड़ी सुधवाकर पिता ने खैर-बबूल के झांखर कटवाये, कटबांस कटवाये और मथुरा वन में पशुओं का बाड़ा बनवाने लगे। बाड़े में पशु हांक दिये गये। वहां गायें, भैंसें ब्याणें लगीं। गूजर की बेटी गाय, भैंसों के पड़ेलू और बछड़े ढीलकर खोड़ के द्वार पर दूध दुहनी करवाने लगी। गूजर की बेटी नौ मन दूध की खेप और अपनी गाय, भैंसों के साथ उरद बाजार की संकरी गलियों से निकली। उस गली में एक हाथी मिला। उसके कारण पड़ेलू और बछड़े बिदकने लगे। वह महावत से बोली-रास्ते से हाथी हटा लो।

महावत- बोला हाथी कोई बछड़ा तो नहीं, जिसे बांध लिया जाये। ये हाथी राजा ब्रजपाल का है। गूजर की बेटी ने एक हाथ से दूध की खेप संभाली और दूसरे हाथ से गाय बछेरे। फिर दाहिने पैर के अंगूठे से हाथी की सांकल दबाकर उसे भरे बाजार में पछाड़ दिया। महावत भागता हुआ राजा के दरबार में गया और बोला- आपके राज में तो स्त्रियां शासन करने लगी हैं। गूजर के घर जन्मी बेटी के बल की कोई सीमा नहीं है। उसने धूरी नाम के हाथी का मान भंग कर दिया है।

राजा के दरबार में राजू गूजर को बुलाया गया। गूजर ने खड़ाऊं पहनी और पाग बांधी। पीली चादर कंधे पर डालकर और चम्पा की छड़ी हाथ में लिए वह दरबार की ओर चला। दरबार में जाकर गूजर ने राजा को प्रणाम किया और कहा कि मैंने कोई चोरी नहीं की और न ही मेरे पशुओं ने कोई उजाड़ किया है। फिर मुझे भरे दरबार में क्यों बुलाया गया है ?

राजा बोला कि तुम्हारी बेटी बड़ी बलवान है। तुम उसे मेरे कुंवर से ब्याह कर मेरे समधी बन जाओ और सजन बहोरा कर लो। अगर प्रेम से चलो तो तुम्हारा यश फैलेगा, नहीं तो जबरन भांवरें पड़वा दूंगा। गूजर बोला कि क्या मेरी बेटी को डांड़ (दण्ड) के रूप में मांग रहे हो। राजा, आप प्रजा के पालनकर्ता हैं और मैं धूरी

झांझ का रहने वाला गूजर। मुझे घर जाकर कुटुम्बजनों से सलाह तो कर लेने दो। राजा ने कहा कि अगर आठवें रोज तक नहीं आओगे तो नौवें दिन जबरन पकड़वाकर भरे दरबार में भांवरें पड़वा दूंगा।

गूजर तीन वनों की दूरी लांघता घर पहुंचा। संध्या हो गयी। धौरी गाय दौड़ी-दौड़ी उसके पास आ गई। ग्वालों ने पूछा कि मुख मलीन क्यों है ? गूजर बोला कि गढ़राजौर का राजा बौरा गया है। वह धन मांगता तो छिकड़ों में भरकर पहुंचा देता। धौरी गायें मांगता तो खोड़ का खोड़ हांक देता। करियल भैंस मांगता तो झुण्ड के झुण्ड दे देता। राजा ने जो डांड़ मांगा है वह नहीं दिया जा सकता।

गूजर की बेटी ऐलादी आंगन में आ गई। उसने दाऊ की सारी बात सुन ली और बोली कि आधी रात होने पर यह झांझ छोड़कर हम किसी दूसरे स्थान को चल दें। बस मुझे एक लाहौरी धनुष और तीर दे दें। मैं गिन-गिनकर राजपूत लड़के मारूंगी। गूजर बोला कि बेटी, भाग भी जायें तो कहां! राजा इस धरती पर किसी को कभी नहीं छोड़ते।

गूजर की पत्नी सरनी बोली कि कुटुम्ब-परिवार को भोजन के लिए बुलाकर एक बार मिल-जुल लो। न जाने अबके बिछुड़े कब मिलेंगे।

आधी रात हो गयी। बेटी ऐलादी ने लोई और मथानी सिर पर रख ली। गूजर ने खोड़ से नगनाचन गाय और करियल भैंस हांक दी। वे चलकर भिड़ोरन पहुंचे। बेटी ने जाते-जाते कहा कि राजा तुम्हारे राज्य में आग लग जाए, तुम्हारा नाश हो, तुमने हमारी जन्मभूमि हमसे छीन ली। वह गढ़राजौर के राजा को शाप देकर चली।

वे चम्बल नदी के घाट पर पहुंचे। माना झांझ के राजा ने उन्हें सुखपूर्वक रहने का आश्वासन दिया। उसने गायों को मांझाहार और भैंसों को मोतीझील दी और गूजर की मौनी पहाड़ की बैठक दी। धौरी से मांझाहार धवल हो गया और करियल भैंसों से मोती झील काली हो गई। धीरे-धीरे इनका इस इलाके में व्यापक प्रभाव हो गया। इस बारे में यह भी कहा जाता है कि गूजरों ने चन्देलों से

पहले बुन्देलखण्ड तट तक राज्य किया। वे चम्बल और केन नदी के बीच चरागाहों में बसेरा करते थे।

कुछ दिन बाद राजू की धौरी गायों को खुसीटा और करियल भैंसों को भौंरा रोग लग गया। इस कारण माना की झांझ में गूजर परिवार का व्यवहार खत्म होने लगा क्योंकि गूजर पर गरीबी आ गई। माता सरनी नगरी में पिसाई करती और बेटा सूरजपाल माना के लुहार की धौंकनी धौंकता।

गूजर की बेटी ऐलादी गंगा-जमुनी (तांबें और पीतल से बना लोटा) लेकर पर्वत पर जाकर शिव जी का ध्यान करने लगी। उसने मां-बाप को छोड़ दिया। वह बारह बरस शिव जी को जल चढ़ाती रही। तेरहवें वर्ष में जब शिव की समाधि खुली तो शिव ने उसे अवतारी कमल के फूल पाने का वरदान दिया। एक समय जब वह औघट घाट पर अपने केश धो रही थी, तभी वरदानी कमल के फूल उसकी ओली (गोदी) में आ गये।

तीन वन पार करती हुई गूजर की बेटी मां के पास आकर बोली कि मां सोर में पड़ रहे, मैं तुम्हारे लिए वरदानी पुत्र का वरदान लेकर आई हूं। मां बोली कि बेटी मेरे केश सफेद हो गये हैं। तुम्हारे पिता भी दंतहीन हैं। मेरे पयोधरों में दूध नहीं उतरता। संसार में हमारी हंसी उड़ेगी। बेटी फिर बोली कि माता मेरी बात मान जाओ, मैंने वीर भाई के लिए शिव जी से वरदान मांग लिया है।

एक दिन माता सरनी ने देखा कि कमल के फूल पर राजकुमार लेटा है। कमल के सैकड़ों दल खिले हैं और उन पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि मानो उस कमल पर हजारों दिये जल रहे हों। इस तरह कारसदेव का अवतरण हुआ। कारसदेव को बांस की टोकरी में नींद नहीं आती तो उन्हें चंदन का पालना बनवाया गया। कारस बड़े होकर गायें चराने जाने लगे -

दिन दूने बढ़े कारस गइयन चराउन जान लगे हो ओ
दरस परस पाये झांझ हरस-हरस लगे हो ओ
भोर भुरैयां हो रये सुपता ऊरे भान हो ओ
भइया तैं कैसो सो रओ धौरी चढ़ाये कान हो ओ

झांझ उनके दर्शन और स्पर्श से हरी-भरी होने लगी। कारस को बड़े सबेरे माता जगाकर कहती कि बेटा तू कैसे सो रहा है। धौरी गाय कान चढ़ाये खड़ी है। झांझ की सब गायें ढिल गई हैं। कारस ने धौरी का दूध पिया और हाट की ओर चल दिए। रास्ते में उन्हें मैगल नाम का दीन कुम्हार मिला। वह कोढ़ी था और अंधा होने के कारण मार्ग खोज रहा था। कारस की नजर पड़ते ही उसका शरीर चमकने लगा। उसकी आंखों में रोशनी वापस आ गई। झांझ में खबर फैल गई कि कारस ने जादू कर दिया।

मैगल कुम्हार ने मिट्टी का एक घोड़ा बनाया और कारस को खेलने के लिए दे दिया। घोड़े का नाम लीला रख दिया। वह मिट्टी का घोड़ा अचानक आधी रात को टापें बजाने लगा। कारस ने घोड़े की पीठ पर हाथ फेरते हुए विचार किया कि अब शत्रु से युद्ध करने का समय आ गया है। वे खांडे की धार निरखने लगे। सेवकों ने घोड़े को मखमल का पलैंचा बांधकर सजाया। उसे मोतियों की कलगी पहनाई। अब घोड़े को भी धीरज नहीं रहा। वह टापों से पाताल फोड़ने लगा, जैसे इन्द्रलोक को उड़ जाना चाहता हो।

कारसदेव ने दोहरे अस्तर वाला सफेद बख्तर पहन लिया। सिर पर झालदार टोप और पीठ पर गेंडे की ढाल रखी। दुधारा गुजराती तेगा बांधा। फेंटे में विविध प्रकार की छुरियां कसीं। लफ-

लफ करता सेल और लाहौरी कमान लेकर कारसदेव ऐसे सज गये मानो दूसरा सूरज उग आया हो।

कारस को देख ऐलादी बोली कि सजकर कहां जा रहे हो। ये हथियार क्यों बांध रखे हैं। क्या किसी ने मेड़ें दबा ली हैं। क्या किसी भूमिपति ने गांव पर अधिकार कर लिया है। बहन ने मना किया पर कारस नहीं माने। हठीले कारस बांगर की रट लगाये हुए हैं।

तीन वनों की दूरी पार करके कारस जंगल पहुंचे। वहां करौंदी और थूहर हरिया रही थी। मकोर उलटकर छायी हुई थी। डांग में घनी झाड़ियां थीं। डालों पर मोर बोल रहे थे। वन इतना घना था कि खोजने पर भी मार्ग नहीं मिलता था। कारस ने बैरी की खबर लेने के लिए मोर उड़ाये और फिर लीला घोड़े पर सवार होकर बोले कि गढ़राजौर के राजा सुनो ! मैं पुरखों का बदला लेकर अपना जी ठण्डा करना चाहता हूं। तुम मुझे जीत लो, नहीं तो मुझसे हार जाने पर मेरी यह बात माननी होगी कि बिटिया और बहन को कभी दण्ड स्वरूप नहीं मांगोगे।

दोनों ओर से खांडे बज उठे। कारस ऐसे गरजते जैसे बादल और उनका खांड ऐसे गिरता जैसे गाज। धरती पर गढ़राजौर का राजा ऐसे गिरा जैसे वृक्ष की कोई शाखा टूटकर गिरी हो। कहते हैं बारह बरस की उमर के कारस नंगी तलवार लेकर खेले तो झांझ के अपार दुख मिट गये।

राजा के खोड़ घेरकर नदियां और पहाड़ियां पार करता सूरजपाल गायों और भैंसों को हरियल झांझ की ओर ले चला। मंगल गान होने लगे कि या तो कृष्ण हुए या कारस जिन्होंने गायों की लाज रख ली। झांझ की गायें और कारसदेव धन्य हैं। चम्बल की तरह दूध की नदियां बहे। कछारों में दुहनियों की मधुर ध्वनियां गूंजें। गोरी धन दूध और पुत्रों से समृद्ध हों। जंगल और पहाड़ अपना श्रृंगार करें। हे कारस देव! तुम्हारी जय हो।

इन समूचे अंचलों में कारसदेव गायें चराने वालों के लोक देवता और पर्यावरण के रक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। गांवों में उनके चबूतरे पाये जाते हैं और उन्हीं

चबूतरों के सामने यह गाथा गाकर कारसदेव को प्रसन्न किया जाता है। यह गाथा छोटे-छोटे प्रसंगों में गाई जाती है और प्रत्येक प्रसंग को गोट कहा जाता है। कहते हैं कि यदि एक गोट गाने से किसी व्यक्ति में कारसदेव का भाव आ जाता है तो फिर दूसरी गोट नहीं गाते।

हमारे यहां के लोक गायकों ने कारसदेव की गाथा को अनेक रूपों में गाया है। इस बारे में कई पाठांतर भी मिलते हैं। एक पाठांतर की चर्चा करना यहां पर इसलिए भी आवश्यक है कि कुछ पाठों में कारसदेव को कारे और कारखदेव के नाम से संबोधित किया गया है। किसी गाथा गायन में कारसदेव नाग की फुफकार से काले हो जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कालिय नाग के फुफकारने से श्रीकृष्ण काले हो जाते हैं।

इस गाथा में श्रीकृष्ण की तरह कारसदेव भी गौओं के रक्षक हैं। कारसदेव के अग्रज सूरजपाल इस गाथा में बलराम जैसे लगते हैं। किसी पाठ में सूरजपाल गढ़राजौर के राजा से सात युद्ध लड़कर जीत लेते हैं। वे कारसदेव के कहने से राजा की गौएं हांक ले जाते हैं।

हम उस वैदिक अनुभव की ओर फिर लौटें जिसकी चर्चा हमने प्रारंभ में की है। जहां किरणें ही धेनुएं हैं और सूरज एक चरवाहा। इन किरण धेनुओं को प्रतिदिन अंधकार से बचाता सूरज सात दिनों की सात रात्रियों से लड़ता है और अंधकार से भरे संवत्सर के बावन गढ़ जीत लेता है।

यह गाथा गाते हुए भागवत कथा की याद आती है। ऐलादी बहना के बलशाली भाई कारसदेव श्रीकृष्ण की ही तरह हैं। वह एक लड़की जो कंस ने पछाड़ी और जो उसके हाथ से छूटकर आकाश में जाकर बोली कि तेरा मारने वाला कहीं और पैदा हो गया है। लोक देवकी माता की उस लड़की को ऐलादी की तरह रचता है और वह अपने तप से बलशाली भाई का वरदान पाती है। वह सुभद्रा जैसी है जिसके दोनों तरफ बलराम और श्रीकृष्ण बिराजे हैं। कारसदेव की गाथा इस तरह सम्पन्न होती है।

कै भये कनैया कै कारस भये।
जिन्नें गइयन की राखी लाज हो।
धन-धन झांझ की गइयां।
धन-धन झांझ की खोड़।
धन-धन कारस महाराज हो।

इन लोक गीतों में कारसदेव का आख्यान गूंजता है। ये गीत चरवाहों की ढेर की तरह हैं। वे अपने पशुओं को दूर बियावान में चराते हुए एक-दूसरे को अपने होने की आवाज लगाते हैं। कोई भी काल हो, राजा हमेशा एक लोक बाधा के रूप में ही सामने आता है और लोक उससे जूझने के लिए अपना लोकदेवता रचता है। कारसदेव की गाथा का यही पाथेय है, यहां कारसदेव की गाथा का आख्यानकर्ता अज्ञात है। इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता।

(साभार, मध्य प्रदेश में लोक आख्यान, लेखक : ध्रुव शुक्ल)

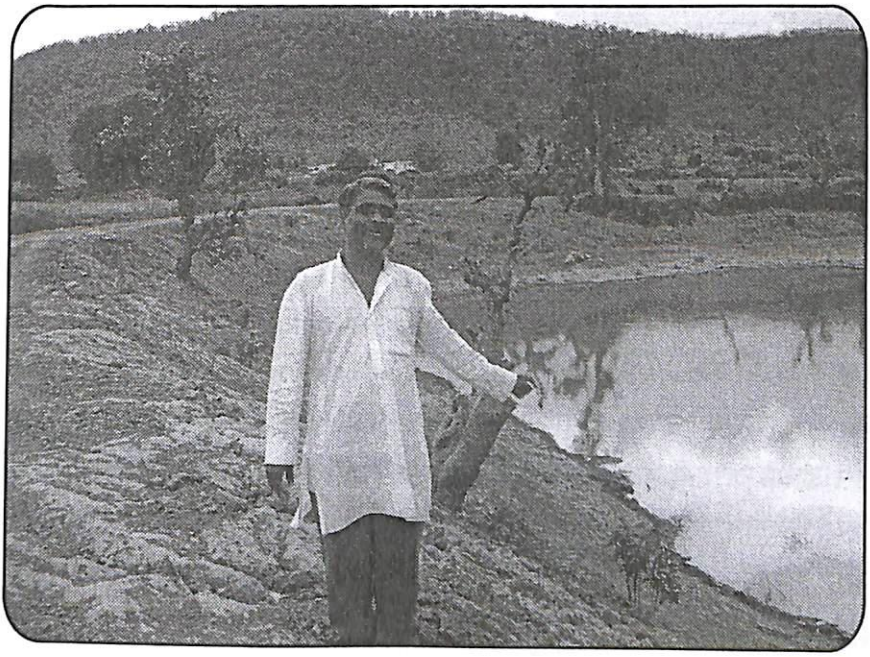

भगाणी नदी की हकीकत

सरिस्का की खूबसूरत और हरी-भरी ऊंची पहाड़ियों के बीच पत्थरों पर सरकती हुई, एक नदी है भगाणी। इसके जलग्रहण क्षेत्र को एक तरह से देखें, तो उसका आकार त्रिभुज की तरह बनता है। इसकी जलधारा मानचित्र में देखने से वह नीचे से ऊपर की ओर जाती हुई लगती है। इसकी मुख्यधारा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। यह धारा गढ़ गांव के उत्तर से शुरू होकर उत्तर में ही मांडलवास, राजौर, मथुरावट, काण्यावास होती हुई कांकवाड़ी के पास पहुंचती है और दूसरी जलधारा में जाकर मिलती है। फिर कांकवाड़ी से पहले पूर्व को फिर दक्षिण की तरफ बहने लगती है। मिसराला गांव के पास जाकर भगाणी नदी की यह धारा महाराजा जयसिंह (अलवर दरबार) के बनाये हुए बांध को भरती है। इस बांध को भरने वाली यह जलधारा पहले दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है और फिर थोड़ा पूर्व को घूम कर नीचे आकर यह उत्तर से दक्षिण की तरफ बहती है। इसकी मुख्य जलधारा अपना आधा से अधिक सफर दक्षिण से उत्तर की तरफ तय करती है और आधे से कम उत्तर से दक्षिण की तरफ चलती है।

भगाणी नदी के साल भर बहते रह सकने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सरिस्का जंगल के अंदर बसे गांव मांडलवास की है। यह गांव 1985 में सूखे और अकाल की भयानक चपेट में था। सरिस्का जंगल के अंदर बसे गांवों की तब की स्थिति पर दो दशक पूर्व किए गए एक अध्ययन के मुताबिक उस समय इस गांव में एक ही आदमी थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा था, उसका नाम था जगदीश। उसकी उमर अब तकरीब साठ साल के ऊपर हो गई है। पर आज भी उसे उसके असली नाम से कोई नहीं जानता। उसके गांव और आस-पास के गांवों के लोग उसे **पढ्या** कहकर ही पुकारते हैं। ज्यादातर लोग उसका असली नाम जैसे भूल ही गये हैं। वैसे वह नवीं क्लास फेल है। अब तो इस गांव के बहुत सारे बच्चे पढ़ने लगे हैं, लेकिन उस समय ऐसा नहीं था। पढ्या होने का गौरव यहां सिर्फ जगदीश को ही प्राप्त था और किसी को नहीं। दरअसल, यह सिर्फ एक

गांव का किस्सा नहीं था, समूचे सरिस्का क्षेत्र के गांवों की तस्वीर ऐसे तमाम किस्सों में नजर आती थी। मांडलवास गांव के ही साठ वर्षीय **बिरदू** ने 1989 में बताया था कि उन्होंने हर बार कांग्रेस को वोट दिया था। हरेक बार नेता आता था। कहता था सड़क बनवा दूंगा, कुआं बनवा दूंगा, जोहड़ बनवा दूंगा पर कुछ नहीं हुआ।

सरिस्का के अंदर के गांवों के तब के हालात पर नजर डालें तो पता चलता है कि वे लू-धूप, गरमी, बरसात, बदहाली, गरीबी और भ्रष्ट तथा संवेदनशून्य सरकारी मुलाजिमों की मार झेलने को अभ्यस्त थे। हमारे देश के ज्यादातर गांवों की असलियत यह है कि गांव तभी खबरों में आते हैं, जब वहां कोई कांड हो जाता है। कांड होने के बाद सरकारी अफसर-मंत्रियों के दौरे और मामला रफा-दफा करने की कोशिश और फिर बेशर्म चुप्पी ही तमाम कांडों पर राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिक्रिया के रूप में दिखाई देती है।

हकीकत में सरिस्का के मुख्य कोर क्षेत्र के गांवों में अरसे से रह रहे करीब चार-पांच हजार लोगों को तो सरकार नाजायज आबादी मानती थी। फिर नाजायज आबादी को बुनियादी मानवीय अधिकार कैसे मिलते ? यह मासूम सा सवाल यहां के जंगलात विभाग के अफसर अक्सर पूछते थे। लिहाजा यहां की बसी आबादी के लोगों के साथ की गई ज्यादतियां, बलात्कार, लूटपाट किसी कानून के दायरे में नहीं आये, क्योंकि यह आबादी नाजायज जो थी। यह इनकी तब की स्थिति थी, जब सरिस्का के इन गांवों में पानी का संगीत नहीं गूंजता था। आज जगदीश पढ्या बताते हैं कि अब तो स्थिति बिल्कुल बदल गई है। यदि हम 1986 में पानी और जंगल बचाने का काम न करते, तो आज यहां होते ही नहीं। उन दिनों हालात इतने खराब थे कि कुओं में पानी बहुत कम हो गया था। जंगल में घास और पत्ते भी नहीं मिलते थे। बहुत सारे ढोर-ढांढा तो भूख से ही मर गये थे। उनकी लाशों पर सारे दिन गिद्ध बैठे रहते थे और हर वक्त यह अंदेशा बना रहता था कि अब कुछ और होने वाला है। हम लोग भी अपने पेट की आग बुझाने के लिए इधर-उधर घूमते रहते थे।

इसी मांडलवास का 1992 तक कायापलट हो गया था। विकास विकल्प संस्थान, नयी दिल्ली की डा. प्रेमा गेरा ने उस समय मांडलवास की बदली हुई

परिस्थिति पर एक अध्ययन किया था। उस अध्ययन के मुताबिक गांधी के रामराज्य के सपने को किसी ने कैसे भी समझा हो, पर अगर उसे कहीं सही ढंग से समझा गया, तो वह है सरिस्का का मांडलवास गांव, यहां इसे सही ढंग से और पूरी ईमानदारी के साथ साकार रूप देने का प्रयत्न किया गया। मांडलवास के किनारे से होकर नन्हीं-सी भगाणी नदी बहुत वेग से बहती है। जब मांडलवास का अध्ययन किया गया था, तब यह भगाणी नदी यहां नहीं बहती थी। लेकिन गांव के बदलने की खूबसूरत प्रक्रिया बखूबी शुरू जरूर हो गई थी। इससे यह एक दम साफ हो जाता है कि धरती सजला कैसे बन सकती है।

मांडलवास गांव सरिस्का नेशनल पार्क के दक्षिण में, पार्क के केन्द्र भाग और परिधीय क्षेत्र के बीच, सीमा पर स्थित है। यह गांव दौसा रोड पर, जो कि सरिस्का और कालीघाटी को जोड़ती है, 30 कि.मी. पर स्थित है। यह अलवर जिले की राजगढ़ तहसील में आता है। मांडलवास अरावली की ऊंची पहाड़ियों से घिरी एक घाटी में स्थित है। यहां की जलवायु शुष्क है। औसत वार्षिक वर्षा 51.2 सेमी. है, जिसमें अधिकतर 25 प्रतिशत मानसून आने पर होती है। जल स्तर 15 मीटर से 27 मीटर की गहराई पर पाया जाता है। तापक्रम गर्मियों में 49 डिग्री से.ग्रेड को पार कर जाता है और सर्दियों में चार डिग्री से.ग्रेड तक गिर जाता है। यहां पर औसत नमी का प्रतिशत 76 है। यहां गांव में बहने वाली कोई भी नदी बारहमासी नहीं है। तब की स्थिति के मुताबिक कुछ-एक मौसमी नाले सतही जल के साधन का काम करते हैं।

यहां की मिट्टी रेतीली दोमट है। गांव सूखे पर्णपाती जंगल के विस्तार परिवेश में स्थित हैं। वनस्पति की मुख्य जातियों में धोक, ढाक, छीला सफेद सालर, खैर, कीकर, बेर, हरसिंगार और बांस हैं। गांव का संपूर्ण क्षेत्र लगभग छह सौ 50 हैक्टेयर है। गांवों में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें खरीफ में ज्वार, बाजरा, मक्का, तिल और तम्बाकू तथा रबी में जौ, चना, सरसों और गेहूं हैं।

लगभग दो सौ वर्ष पहले यह गांव बसना शुरू हुआ था। तब यहां तीन परिवारों ने इसे बसाया था। आज यहां के परिवारों की तादाद सौ-सवा सौ तक पहुंच गयी है। जनसंख्या रिकार्ड में पहले यह राजौर गांव का हिस्सा दिखाया जाता था,

लेकिन 1991 की जनगणना में इसे अलग दर्शाया गया है। गांव के सभी परिवार मीणा जाति से संबंध रखते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय पशुपालन और खेती है। गांव में प्रत्येक व्यक्ति के पास औसतन लगभग एक से डेढ़ हैक्टेयर जमीन है। पशुधन के नाम पर गांववालों के पास गाय भैंस, बकरी कुल मिलाकर 700-800 मवेशी हैं। तरुण भारत संघ के 1991 के सर्वेक्षण के अनुसार गांव की आर्थिक स्थिति की विशेषता स्वयं भरण-पोषण की है। कहते हैं पहले जितना ये लोग पैदा करते थे, उतनी ही खपत भी कर लेते थे। लेकिन अब बाजार में भी ले जाते हैं।

गांव किसी भी बस सेवा से जुड़ा हुआ नहीं है। छोटे वाहन ही यानी कार-जीप से ही यहां जाया जा सकता है। गांव में कोई बिजली की सप्लाई भी नहीं है। गांव में कोई बाजार नहीं है। लोग पैदल ही 10-15 किलोमीटर दूर टहला या किशोरी में मूलभूत जरूरतों की वस्तुओं की खरीददारी के लिए जाते हैं। सबसे नजदीक कस्बा थानागाजी और राजगढ़ 50 कि.मी. की दूरी पर है तथा अलवर 70 कि.मी. दूर है। यहां एक प्राथमिक विद्यालय और एक चिकित्सालय तरुण भारत संघ ने 1987 में खोला। राजौरगढ़ में एक मिडिल स्कूल है, जिसमें हमेशा शिक्षकों का अभाव रहता है।

यहां कुओं से कुल 27 प्रतिशत भूमि पर सिंचित खेती होती है। 3 प्रतिशत भूमि पर असिंचित खेती हो रही है। शेष वन भूमि है। मिट्टी के बांधों में जो कि क्षेत्रीय भाषा में जोहड़ कहे जाते है, वर्षा का पानी एकत्र होता है।

जब तरुण भारत संघ मांडलवास में आया, तब यहां गांव में केवल एक पुराना जोहड़ व एक छोटी सी पक्की मेंड़बंदी थी। रख-रखाव की कमी के कारण ये प्रयोगविहीन हो चुके थे और अधिकतर वर्षा का पानी बहकर नालों में चला जाता था। साल-दर-साल आये सूखे ने भी स्थिति को बदतर करके गांव की अच्छी जमीनों पर गहरा प्रभाव छोड़ा था। दो या तीन कुओं को छोड़कर अधिकतर कुएं सूख चुके थे। भैंसें-गाएं प्यासी व भूखी मर गई थीं। जमीन और पशुधन, दोनों की ही उत्पादकता प्रचंड रूप से घट चुकी थी। परिणामस्वरूप

अधिकतर लोग दिल्ली और अहमदाबाद की तरफ मजदूरी करके पेट भरने तथा जीवन बचाने के लिए प्रवास कर चुके थे। तरुण भारत संघ को यहां के लोगों ने गोपालपुरा में हुए काम को देखकर अपने गांव में आने का न्योता दिया। तब इस संस्था ने इस गांव में 1987 में काम शुरू किया। जैसा कि दूसरे गांवों में किया जा रहा था, यहां भी पहले स्वास्थ्य और शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत की गई। इस कार्य ने तरुण भारत संघ के लिए गांव में प्रवेश द्वार का काम किया। साथ ही इनकी दूसरी समस्याओं को समझने का मौका भी दिया। राजेन्द्र सिंह और संस्था के कुछ दूसरे कार्यकर्ता सप्ताह में दो बार गांव में भ्रमण करने जाते। जोहड़ों के लाभों के बारे में, जो कि उनकी समस्याओं का तात्कालिक निदान था, बात करते। क्योंकि वहां की सबसे अहम् समस्या लोगों और जानवरों, दोनों के लिए पीने के पानी की ही थी।

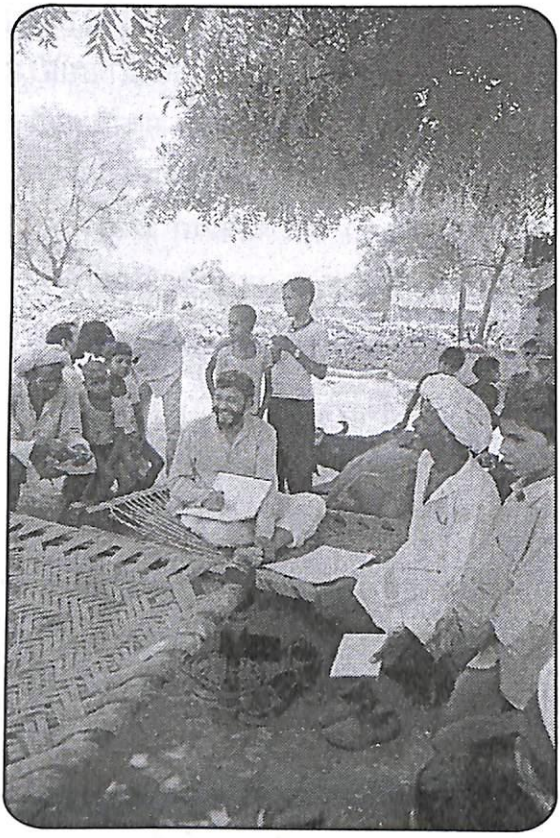

मांडलवास के ग्रामीणों के साथ चर्चा करते राजेन्द्र सिंह व जगदीश पढ़या

गांववालों में संदेह था। क्या वास्तव में काम होने की संभावना है ? वे जानते थे कि 1975 में गांव में सरकार द्वारा बनाये गये चैकडैम के सिवाय कोई दूसरी शुरुआत फिर कभी नहीं हुई थी। उस चैकडैम में कई स्थानों पर दरार पड़ चुकी थी, लेकिन संबंधित विभाग को लगातार रिमाइंडर भेजने के बावजूद उस समय तक उसकी

मरम्मत नहीं की गई थी। वह गाद से भी भर चुका था। इस कारण गांव के लोगों को उसका लाभ नहीं मिल रहा था। इसलिए लोगों का सरकार के प्रति असंतोष था। उनका संदेह (अविश्वास) तरुण भारत संघ के साथ भी था जबकि इन्हें ये गांव वाले ही बुलाकर लाये थे। उन्होंने इनका कार्य भी देख लिया था, फिर भी लोगों का संदेह कायम रहा।

इसके बावजूद तरुण भारत संघ ने गांव के बुजुर्गों के पास जाने का निर्णय लिया। इसके बाद गांव के लोगों में से कुछेक ने दूसरे गांवों में जोहड़ों की स्थिति के आंकड़ों को समझने के लिए गांव के लोगों को एकत्र किया। गांव के बुजुर्ग लोग कुछ जवान लोगों के साथ गोपालपुरा और अन्य गांवों में, जहां तरुण भारत संघ की मदद से जोहड़ों के पुनर्जीवन का कार्य हो चुका था, भी गये। उन्होंने शुरू में छोटे समूहों के साथ तथा सिलसिलेवार गांव के सभी परिवारों के साथ बातचीत की। यहां महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रत्येक परिवार इस बारे में संयुक्त प्रयास की जरूरत महसूस कर रहा था। लेकिन यह काम इस कारण कठिन लग रहा था कि ऐसी परंपरा समाज से वर्षों पहले खत्म हो चुकी थी और सभी परिवार अब स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने के चक्कर में उलझे हुए थे।

सिंचाई तंत्र में हिस्सेदारी और जोहड़ों का प्रभाव

यहां सबसे महत्वपूर्ण पहलू है सिंचाई तंत्र में हिस्सेदारी की प्रक्रिया का। विकल्प विकास संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किये गये अध्ययन में जो निष्कर्ष सामने आए, उनके अनुसार सिंचाई तंत्र में किसानों की हिस्सेदारी के मूलभूत आधार निम्नांकित हैं जिनको जान लेना बेहद जरूरी है।

सबसे पहले तंत्र की रूपरेखा (रूपांकन) को लें, इसमें जोहड़ के वास्तविक निर्माण से पूर्व ग्रामसभा में लोगों के साथ जोहड़ के लिए उचित स्थान, मिट्टी की किस्म, एकत्र पानी के संभावित उपयोग, कैचमेंट और प्राप्त होने वाले लाभों पर अध्ययन तथा इस बारे में विस्तार से वार्तालाप किया जाता है। गांव के बुजुर्ग और तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने इस विषय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

दूसरा है कैचमेंट क्षेत्र का अध्ययन। इसमें जोहड़ निर्माण की जगह का चयन अहम् होता है क्योंकि जोहड़ ऐसे स्थान पर बनाया जाता है ताकि अधिकतम वर्षा का पानी बहता हुआ उसमें आ सके। निम्न बातों से इसकी आवश्यकता मालूम पड़ती है। एक, वर्षा का घनत्व। यह वर्षा के औसतन हिस्सों को नियंत्रित करता है, जो बहकर जोहड़ में आता है। दो, कैचमेंट के लिए स्थलाकृति। सामान्यतः इसकी प्रवृत्ति एक वर्गाकार या गोलाकार कैचमेंट एरिया में प्रायः सहायक उपनदियों या नाले के साथ-साथ आने और मुख्यतः उसके केन्द्र के पास ही मिलने की होती है। कैचमेंट एरिया का ढाल तेज बहाव को प्रभावित करता है। सामान्यतः जोहड़ का निर्माण उन स्थानों पर किया जाता है, जहां दोमट मिट्टी अधिक मात्रा में पाई जाती है। कारण यह मिट्टी जोहड़ निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

तीसरा है जोहड़ के आकार-प्रकार का निर्धारण करना। यह मुख्यतः जोहड़ के साइज और वर्षा के बहकर आने-वाले जल पर निर्भर करता है और उसका आकार पानी के बहाव तथा दबाव पर निर्भर करता है। मुख्य रूप से सभी जोहड़ अवतलाकृति होते हैं। जहां पर मुख्यधारा अधिक दबाव बनाती है, वहां पर इनको चौड़ाई के आधार पर बनाया जाता है। कुएं-जोहड़ों में, जहां एक स्थान की अपेक्षा अधिक स्थानों पर जल दबाव अधिक होता है, वहां या तो वह कुछ उत्तल आकृति के बनाये जाते हैं, या फिर एक राजगिरी रचना (मोरियां) जो कि लकड़ी के लट्ठों से बंद कर दी जाती है, के आधार पर बनाये जाते हैं।

मांडलवास में जोहड़ों की स्थिति

मांडलवास के बारे में स्थिति यह है कि यहां एक जोहड़ पूरा भरकर दूसरे में जाता है। कृषि योग्य भूमि इनके बीच पड़ती है। शेष सभी एकल इकाई के रूप में है। गांव वालों द्वारा जोहड़ के लिए स्थान के चुनाव के बाद उन परिवारों की पहचान की जाती है जो जोहड़ से प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते हैं। वे स्वैच्छिक रूप से अपने श्रम और जमीन का हिस्सा अंशदान के अनुसार देते हैं जबकि जोहड़ उनकी कृषि योग्य भूमि में बनाया जाता है। सभी परिवार

आवश्यकता एवं उपलब्धता के आधार पर जोहड़ से पानी या तो पंप द्वारा या फिर नालों द्वारा लेते हैं।

गांव में जलतंत्र के प्रबंध का कार्य ग्रामसभा द्वारा पूरा किया जाता है। ग्रामसभा एक साधारण बॉडी होती है। यह प्रत्येक परिवार के लिए अनिवार्य होता है कि फसल काटने के मौसम को छोड़कर शेष समय में महीने में दो बार सामान्यतः ग्रामसभा की मीटिंग में उपस्थित होवें। फसल पकने के मौसम में यदि आवश्यकता हो, तो ही उपस्थित हों। तंत्र प्रबंध के लिए कोई एक नेता ग्रुप नहीं होता बल्कि सभी परिवार सभी के कार्यों में हिस्सा लेते हैं और सर्वानुमति के आधार पर निर्णय लेते हैं। ग्रामसभा की जिम्मेदारियों में मुख्यतः जोहड़ की वार्षिक मरम्मत कराना, जल संरक्षण हेतु कानून और नियमों का निर्माण करना एवं आपसी संघर्षों का निपटारा करना आदि बातें आती हैं।।

जहां तक जोहड़ों के प्रभाव का सवाल है, वह गांव में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कृषि उत्पादकों की पैदावार में बढ़ोत्तरी और कृषि योग्य भूमि का विस्तार इसका जीता-जागता सबूत है। पूरे साल कुओं में पानी की उपलब्धता रहती है। असल में जोहड़ों ने अप्रत्यक्ष रूप से समुदायों को आर्थिक मजबूती प्रदान की है और उनके आत्मविश्वास में वृद्धि की है।

जोहड़ों का सीधा प्रभाव भूमि की उत्पादकता पर देखा जा सकता है। गांव वालों के अनुसार 'सूखा वर्ष' से पहले एक बीघा जमीन में (एक बीघा = 0.25 हैक्टेयर) 280 से तीन सौ किलोग्राम मक्का पैदा होती थी, लेकिन जोहड़ बनने के बाद अब उसकी पैदावार चार सौ किलोग्राम तक बढ़ गई है। लांबावाला जोहड़ से लाभ उठाने वाले किसानों का कहना है कि अच्छी वर्षा न होने के बावजूद भी मक्का दुगुनी पैदा होती है। कृषि योग्य भूमि का भी विस्तार हुआ है। पूरे गांव की कृषि योग्य क्षेत्र की मिट्टी नमी रोकने योग्य हो गई है। साथ ही अब रबी की फसल भी लेते हैं। उसके लिए कुओं के पानी की सहायता ली जाती है। उत्पादकता में वृद्धि तथा पानी उपलब्धता की सुधरी स्थिति ने नौकरी-मजदूरी हेतु, गांव से शहरों की ओर हो रहे पलायन की स्थितियों को भी प्रभावित किया है।

गांव के बाहर जो कुएं हैं उनमें से अधिकतर सूख गये थे। जोहड़ बनने के बाद छह कुओं में तो स्पष्ट बदलाव दिखा और अब उनमें पानी 16 से 17.5 मीटर तक उपलब्ध है जो पहले नहीं के बराबर ही होता था। गांववाला जोहड़ से मांडलवास के उत्तर के गांवों में 15 कुएं दोबारा सजल हो गये, जिनमें कालाखेत, राजौर, कांसला, काण्यास और मथुरावट प्रमुख हैं।

असलियत तो यह है कि गांव वालों के संयुक्त प्रयास से जोहड़ों का सामुदायिक प्रबंध और वृक्षारोपण, गांव वालों के स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण का ही आभास देता है। यह जंगलों के लिए भी वरदान है। इसमें दो राय नहीं कि लोगों का समूह एक सामूहिक अस्तित्व के रूप में ढेर सारा आत्मविश्वास पैदा कर अपनी आवश्यकताओं का मूल्यांकन कर उनके समाधान की दिशा में काम कर सकने में उपयोगी हो सकता है।

यह सच है कि गांव वालों के बीच विचारों का आदान-प्रदान विभिन्न सामाजिक विषयों पर जागरूकता को बढ़ाता है। इसका प्रमाण मांडलवास में मिल जाता है, जहां ग्राम सभा में सामाजिक समस्याओं, जैसे दहेज और बाल-विवाह पर विचार-विमर्श होता है। इसके साथ वहां कई बदलाव भी देखने में आये हैं जो ग्रामसभा के नेतृत्व में अधिक सफलतापूर्वक हो पाये हैं। ग्रामसभा की महिला सदस्य गांव की औरतों से सामाजिक विषयों तथा पोषण और शिक्षा आदि मुद्दों पर बात करती हैं।

मांडलवास में आये बदलाव से जाहिर हो जाता है कि यहां के लोग अब कोई भी बड़े से बड़ा काम आसानी से कर सकने के लिए हर समय तैयार रहते हैं। जंगल, जल, जमीन संरक्षण के काम वे अपनी स्वेच्छा, समझ व विश्वास के साथ कर रहे हैं। इन्हें आज किसी का डर नहीं है। इसलिए मांडलवास आस-पास के गांवों के लिए जमीन, जल, जंगल आदि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

तरुण भारत संघ का भगाणी में प्रवेश

तरुण भारत संघ ने 1984-85 में गोपालपुरा में जल संरक्षण का कार्य शुरू किया। इस कार्य को देख कर मांडलवास गांव के लोगों ने तरुण भारत संघ के लोगों से सम्पर्क करके अपने यहां भी कुछ करने की पहल की। राजेन्द्र सिंह जी स्वयं इस मांडलवास गांव में जाकर, लोगों से मिल कर काम करने की सोचने लगे। लेकिन यहां की युवा पीढ़ी रोजगार हेतु पलायन कर 8 महीने गांव से बाहर रहती थी। खरीफ की फसल की कटाई के समय ही वह यहां गांव में आते थे। फिर फसल काट-समेट कर दो महीने गांव में रुक कर वापिस कमाने-खाने शहरों की ओर निकल जाते थे।

तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता मुन्नालाल शर्मा और बाबूलाल शर्मा ने इस क्षेत्र में सबसे पहले शिक्षा का काम शुरू किया। गजराज सिंह जी (बनाजी)ने मांडलवास को संस्था के कार्यों के लिए उपकेन्द्र बनाकर इस क्षेत्र में स्वास्थ्य का कार्य शुरू किया। इसके अलावा उन्होंने ग्राम संगठन बनाकर जल-संरक्षण के लिए लोगों को तैयार किया। इस तरह धीरे-धीरे लोगों में संस्था और उसके कार्यकर्ताओं के प्रति विश्वास पनपने लगा और लोगों का सुसुप्त अभिक्रम जाग्रत हुआ।

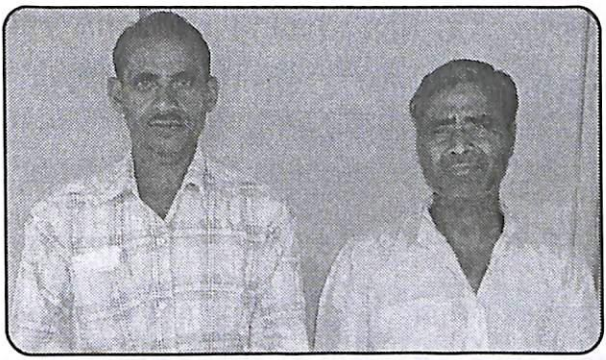

समाज उत्थान के लिए समर्पित कार्यकर्ता महेश एवं बनवारी लाल

जागृति के इसी अभिक्रम में गढ़ गांव के महेश शर्मा और बनवारी सैन भी संस्थागत कार्यों से सक्रिय रूप से जुड़ गये। बनवारी सैन मथुरावट में बाल-शिक्षण कार्यक्रम के

अन्तर्गत स्कूल चलाने के साथ ही साथ गढ़ से लेकर कांकवाड़ी तक ग्राम-संगठन करके जल-संरक्षण का काम भी करने लगे। इस काम में उनके पिताजी हनुमान सहाय सैन भी उनकी मदद करते थे। महेश शर्मा भी गढ़ में स्कूल चलाते हुए पूरे क्षेत्र में संगठन, चेतना, जल-संरक्षण व जंगल-संरक्षण का काम सक्रिय रूप से करते रहे हैं।

संस्था के कार्यकर्ता शिक्षण व स्वास्थ्य कार्यक्रमों के माध्यम से यहां के बुजुर्गों को विश्वास में लेकर धीरे-धीरे समूहों में मीटिंग करने लगे। लेकिन जंगलात विभाग के कर्मचारियों को इस इलाके में संस्था के कार्यकर्ताओं की उपस्थिति अखरने लगी। वे लोगों को संस्था के विरुद्ध भड़काने लगे। इसके बावजूद गजराज सिंह जी ने यहां के समाज को संगठित करने का बीड़ा उठा लिया। उन्होंने एक समूह के लोगों को साथ लेकर धाणका वाला जोहड़ का कार्य शुरू किया। लेकिन कुछ असामाजिक तत्वों की अड़चन से वह काम बीच में ही रुक गया। उन्होंने फिर जगदीश पढ्या, बिरदू बाबा आदि को विश्वास में लेकर काम शुरू किया। फलस्वरूप इसके बाद धाणका वाला जोहड़ बनकर तैयार हो गया।

इस तरह भगाणी नदी में सबसे पहले काम मांडलवास गांव में धाणका वाला जोहड़ से शुरू हुआ। इसके बाद बना सरसा वाला बांध और इस तरह एक के बाद एक बांधों का काम पूरा होता चला गया, पूरी छींड़ में पानी के काम शुरू होने का एक दौर सा चल पड़ा। लोग पदयात्रा करते और हर नये गांव में जाकर अपने गांव में हुए जल संरक्षण कार्यों के प्रभाव की कहानी सुनाते। इससे उसके आगे के नये गांव में पानी संरक्षण का कार्य शुरू होने लगा। इस तरह तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता व गांव के अगुवा लोग (पुरुष) साल में तीन पदयात्राएं करने लगे। यह पहली पदयात्रा कार्तिक मास में देवउठनी एकादशी से शुरू हुई। उसका उद्देश्य 'जोहड़ बनाओ, पानी बचाओ' पदयात्रा रहा।

दूसरी पदयात्रा 'ग्राम स्वावलम्बन पदयात्रा' के नाम से जानी गई। यह पदयात्रा अक्षय तीज से (आखातीज) अप्रैल में शुरू होती है। इसका उद्देश्य गांव को स्वावलम्बी बनाने हेतु स्वयं का खाद, बीज, पानी सहेज कर रखना तथा गांव में

आपात स्थिति से निपटने हेतु प्रत्येक परिवार का अपनी फसल का हिस्सा ग्राम कोष में जमा कराने का रहता है ताकि जरूरत पड़ने पर जरूरतमंद व्यक्तियों के काम आए तथा सेठ-साहूकार व सूदखोरों से निजात पायी जा सके।

तीसरी पदयात्रा 'पेड़ लगाओ, पेड़ बचाओ'। यह पदयात्रा सावन मास में रक्षा-बन्धन के दिन से शुरू होकर पूरी नदी बेसिन क्षेत्र में की जाती है। इसमें संस्था के कार्यकर्ता, गांव के अगुवा लोग, प्रत्येक गांव, ढाणी में जाकर लोगों के साथ जंगल संरक्षण व संवर्द्धन पर चर्चा, मीटिंग, संवाद करके अपनी-अपनी हद (सीमा) से जंगल संरक्षण, संवर्द्धन करने के नियम कानून बना कर क्रियान्वित करने की रूपरेखा तैयार करके उसे क्रियान्वित करते हैं। इस प्रकार ये पदयात्राएं शुरू में भगाणी नदी बेसिन में की गयीं, जो आज तरुण भारत संघ के पूरे कार्यक्षेत्र में परम्परा का रूप लेकर हर साल में होने लग गयी हैं।

वन्य जीव एवं जंगल संरक्षण के लिए पद यात्रा

इन पदयात्राओं से पूरी भगाणी नदी बेसिन में एक ऐसा असर पड़ा कि लोग अपने-अपने गांवों में संगठित होकर अपने जल, जंगल संरक्षण के काम में जुटने लगे। जंगलात विभाग के कर्मचारीगण गांव में जंगल संरक्षण हेतु मीटिंग होने से अपने आप में शर्मिंदगी महसूस करने लगे और उससे बौखलाकर येन-केन प्रकारेण गांव के संगठन को तोड़ने के लिए लोभ के साथ नये-नये तरीके

आजमाने लगे। इसी दौरान तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने मासिक बैठक में निर्णय लिया कि इस तरह तो काम आगे स्थायी नहीं बढ़ सकता। इसके लिए सोचना चाहिए कि हम किस प्रकार जंगलात विभाग को यह बात समझाएं कि जो काम आप कर रहे हैं, वही कार्य हम कर रहे हैं। अन्तर सिर्फ समझने व सोचने का है। इस बात को जंगलात विभाग के लोग समझें, लेकिन जंगलात महकमा तो तरुण भारत संघ को अपना दुश्मन मानता था तथा कार्यकर्ताओं पर झूठे केस दर्ज कराने में जुटा हुआ था।

अब यहां सवाल यह था कि जंगलात विभाग, गांव के लोग व संस्था के कार्यकर्ता एक मंच पर कैसे आएं? इस पर मासिक मीटिंग में तय हुआ कि पूरे सरिस्का क्षेत्र के प्रत्येक गांव में रामायण पाठ शुरू हो जिसमें संस्था का कार्यकर्ता, उस गांव का कर्मचारी व ग्रामीण लोग मिल कर रामायण पाठ सुनें। इससे आगे संवाद बढ़ाया जा सके। इसके लिए 1988 में सरिस्का के गांवों में गांव के लोगों की सहमति से रामायण पाठ शुरू किये गये।

अखंड रामायण पाठ करते तभासं कार्यकर्ता एवं ग्रामीण

इस अखण्ड रामायण पाठ के पीछे मुख्य मकसद जंगल व जंगली जीवों के संरक्षण हेतु जंगलात कर्मचारी, अधिकारियों और ग्रामीणों की एक सोच बने तथा आपस की दूरियां कम हों। इस अखण्ड रामायण पाठ करने से जंगलात

विभाग की सोच में परिवर्तन होने लगा। वे गांव के लोगों के मन (उद्देश्य) को समझने लगे तथा गांव में की जाने वाली मीटिंग में भी हिस्सा लेने लगे। इस प्रकार तरुण भारत संघ, जंगलात विभाग व गांव के लोगों के समन्वय से केवल जंगल की सुरक्षा नहीं बल्कि वन्य जीव भी अधिक सुरक्षित महसूस करने लगे। इस प्रकार भगाणी क्षेत्र में जंगल एवं जल संरक्षण का काम अच्छा चलने से काम को देखने सरिस्का बाघ परियोजना के तत्कालीन निदेशक फतेह सिंह राठौड़ स्वयं मांडलवास आए और जल संरक्षण के कामों को देख कर खुश हुए।

वर्ष 1991 में सब कुछ बदला देख कर मांडलवास की ग्राम सभा में आकर मुख्य वन्य जीव प्रतिपालक बी.डी. शर्मा व सरिस्का के निदेशक फतेह सिंह राठौड़ ने ग्राम सभा अध्यक्ष बिरदू मीणा को शॉल ओढ़ा कर सम्मानित किया। इस प्रकार सरिस्का बाघ परियोजना के निदेशक द्वारा ग्राम सभा अध्यक्ष को सम्मानित होता देख ग्राम सभा का अपने कामों के प्रति आत्मविश्वास बढ़ा तथा गांव वालों के संयुक्त प्रयास से भगाणी नदी बेसिन में एक के बाद एक सैकड़ों जोहड़-बांध-एनीकट बनते चले गये। वे जल, जंगल, जमीन संरक्षण के कामों को अपनी इच्छा से अपनी समझ और विश्वास के साथ करने लगे।

प्रत्येक गांव की ग्राम सभा ने अपने-अपने जंगल की सीमा में गीली लकड़ी नहीं काटने के नियम-दस्तूर बनाये। इस प्रकार ग्राम सभा ने अपने आपको अनुशासित किया, परिणामस्वरूप जंगल बचने लगे। नंगे हुए पहाड़ों पर हरियाली लौटने लगी। प्रत्येक गांव में जंगल बचाने वालों की सक्रिय टीम बननी शुरू हुई। इसका नेतृत्व मांडलवास में बिरदू बाबा, जगदीश पढ्या, सुस्या व लछमा देवी ने किया, राजौर में नान्छा सरपंच, कालू मीणा, मूलचन्द, कजोड़ व कजोड़ी देवी ने तो कांसला में भौंरे लाल ने, मथुरावट में पाँचू मीणा व रामजी बलाई ने, कांकवाड़ी में रामप्रताप ने, पीला पानी में रतना, रमेश तथा प्रभाती गूजर आदि ने किया। छींड़ के लोगों को अपनी खोयी हुई ताकत का अहसास होने लगा तथा आत्मविश्वास को बल मिलने से यहां के प्रत्येक गांव में जंगल के काम के साथ-साथ पानी का काम भी शुरू होने लगा। पूरी छींड़ के प्रत्येक गांव-

ढाणी के लोग जल संरक्षण कार्यों में जुट गये। ध्यान रहे कि गढ़, मांडलवास, मथुरावट, कांकवाड़ी व भगाणी तक के क्षेत्र को आसपास के लोग ''राजौर गढ़ की छींड़'' के नाम से जानते हैं।

जगह-जगह जोहड़ एनीकट बांध बनने से धरती का पेट पानी से भरने लगा तथा जमीन ऊपर भी पानी रहने से जंगली जानवरों को शिकारियों से खतरा भी कम होने लगा। क्योंकि जब पानी की समस्या थी तो जंगली जानवर वाटर होल पर ही पानी पीने आते थे और ये वाटर होल एक तरह से शिकार स्थली (माला) ही होते थे। जैसे ही जानवर पानी पीते, उधर से शिकार की टोह में शिकारी गोली दाग देता। इस तरह जंगली जानवरों में भय व्याप्त था।

अब तो जगह-जगह पानी होने से जंगली जीव पुनः अपनी अभय मुद्रा में विचरने लगे हैं। नंगी पहाड़ियों पर जंगल, धरती मां का खाली पेट भरने हेतु जगह-जगह जोहड़, बांध, एनीकट व लोगों का पानी के उपयोग के लिए स्वानुशासन तथा मर्यादित खेती किए जाने से यहां की मृत प्रकृति पुनः जीवित हो गयी है। अब भगाणी के स्तनों से फिर से अमृत की धारा बहने लगी है। भगाणी की अमृत के समान धारा, मां के स्तनों से अपने बच्चों के लिए बहने वाली धारा के समान है। इस क्षेत्र के जीव इसी प्रकार इसका पान कर रहे हैं। जब तक हमारा रिश्ता मनुष्य मात्र से ऊपर उठ कर सम्पूर्ण जीव जगत के कल्याण की भावना से बना रहेगा, तब तक यह भगाणी बहती रहेगी। जिस दिन हम स्वार्थ में फंस कर इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का शोषण शुरू कर देंगे, यह नदी फिर सूख जाएगी।

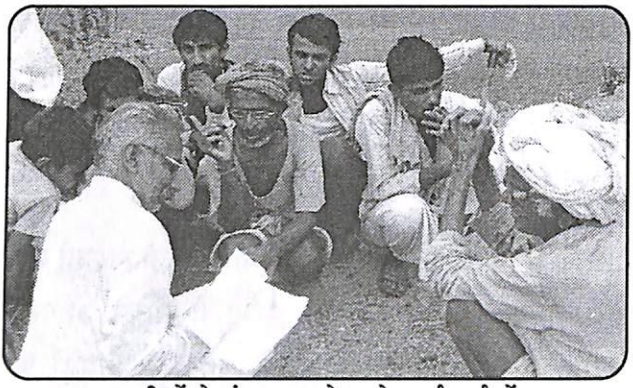

ग्रामीणों से जंगल बचाने वाले कार्यकर्ताओं की जानकारी लेते तभासं के गोपाल सिंह

विकास की कहानी-लोगों की जुबानी

मांडलवास के बरदू मीणा गांव की खुशहाली से आज फूले नहीं समाते। वह कहते हैं कि अब तो सब कुछ बदल गया है। अब न केवल हम सबका

रहन-सहन बदला है, बल्कि गांव की प्रतिष्ठा भी बढ़ी है। सबसे बड़ी बात तो यह हुई है कि अब बच्चों की शादी की कोई समस्या नहीं रही है। अब लड़के-लड़कियों के रिश्तों की कोई कमी ही नहीं रह गई है जबकि पहले पानी की समस्या होने के कारण कोई भी व्यक्ति अपनी बेटी को यहां ब्याहना नहीं चाहता था। अब हमारे खेतों में खूब पैदावार होती है। नतीजा यह है कि अब सारे सुख हैं। अब तो बुरे दिन फिर गये हैं। हमारे दुख का मूल कारण पानी की कमी थी, जिसे तरुण भारत संघ ने दूर कर दिया। मेरी तो यही इच्छा है कि जिस पानी ने हमें दुबारा जिंदगी दी है, आखिरी दम तक उसे बचाने के काम में जुटा रहूं। बिरदू बाबा गांव के प्रतिष्ठित आदमी हैं।

जल संरक्षण कार्यों यथा जोहड़-एनीकट-छोटे बांधों के निर्माण का परिणाम यह हुआ कि मांडलवास ही नहीं, पूरा क्षेत्र खुशहाल हुआ और लोग समृद्ध हुए। इस बारे में मांडलवास का ही रामपाल मीणा आज कहता है कि 1985 में हमारे यहां अकाल था जिससे गांव में अन्न का संकट हो गया था, मेरी खेती तो पानी की कमी के कारण पूरी तरह से बर्बाद हो गई थी। लेकिन अब हमारे बांधों में पानी हो जाने पर सभी कुओं में पानी हो गया है जिससे फसल अच्छी होने लगी है।

रामपाल मीणा की मानें तो तरुण भारत संघ ने हमारे दुख की जड़ ढूंढ़ निकाली। संघ ने ही दुख के मूल कारण पानी की कमी को दूर करने की तरफ हमारा ध्यान दिलाया। सबसे पहले हमने गांव के पास धानकावाला

जोहड़ व गांव का जोहड़(गोदाम के पास वाला जोहड़) निर्माण किया। इन दोनों जोहड़ों के बाद ही हमारे गांव की तकदीर बदलनी शुरू हुई। भगाणी की दोनों मुख्यधाराओं, गढ़ की तरफ से आने वाली धारा और गोपालपुरा के पहाड़ से आने वाली धारा का पानी गांव में ही रुकना शुरू हो गया। इसके रुकने से हमारे कुओं का जलस्तर भी बढ़ना शुरू हुआ। हमने खेती का काम भी चालू कर दिया। हमारे बुरे दिन फिरने लगे। अच्छे दिन आने लगे। इन दोनों जोहड़ों के बाद तो एक के बाद एक और जोहड़/बांध बनने शुरू हो गये। आज हमारे गांव की सीमा में छोटे-बड़े करीब 27 जोहड़, बांध व मेंड़बंदियां बन चुके हैं।

मांडलवास के जगदीश पढ़्या कहते हैं कि सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमें तरुण भारत संघ ने जंगलों के महत्व को समझाया। पहले हम जंगल काटते थे और वन कर्मचारी हमसे खानगी (रिश्वत) चूंठते (वसूलते) थे। हम यह मानते हैं कि यह जंगल हमारा है। आज हमारे गांव से खानगी जाना और जंगल का कटना बिल्कुल ही बंद हो गया है। गांव के चारों ओर हरा-भरा जंगल नजर आता है। जो महिलाएं पहले दिन-रात लगकर भी ईंधन चारे का इंतजाम नहीं कर पाती थीं, अब कुछ ही घटों में यह सारा काम निबटा लेती हैं।

इसी गांव के एक दूसरे बुजुर्ग पांचू का कहना है कि पहले तो घर में खाने तक के लाले थे। हम अनाज मोल लाते थे लेकिन अब तो हम खुद अपना अनाज बेचते हैं।

मथुरावट गांव के रमसी बलाई कहते हैं कि पहले तो यहां के ज्यादातर कुएं सूख गये थे। हम खेती करना ही जैसे भूल गये थे। बस कुछ भेड़-बकरी ही बची थीं हमारे पास, उन्हीं के सहारे जीवन चलता था। गांव में कोई धर्म-धोरा नहीं बचा था। पर अब तो हमने पक्के मकान भी बना लिये हैं। दूध और अनाज की तो खूब मौज हो गई है। सुबह गाय-भैंसों को चरने के लिए खोल देते हैं। वे शाम को अपना पेट भरके अपने आप ही वापस लौट आती हैं। अब हमको व हमारे पशुओं को खाने-पीने की कोई चिंता नहीं रही।

मांडलवास की लछमादेवी कहती हैं कि पानी ने हमारी किस्मत के बंद दरवाजों को खोल दिया है। खेतों में पैदावार बढ़ोत्तरी हुई जिससे समस्याएं खुद-ब-खुद खत्म होती गईं। इसमें पानी की अहम् भूमिका है। हमारे यहां घी-दूध की अब कोई कमी नहीं है। पैसा भी हाथ में खूब रहता है और समय भी खूब है अब हमारे पास। अब दुख के दिन खत्म हो गए। सुख क्या होता है, यह हमने अब जाना है। हमने तो वे दिन भी गुजारे हैं जब घर चलाना आसान नहीं, बहुत मुश्किल था। सच में पानी के काम की ही बदौलत महिलाओं की किस्मत बदल पायी है।

माधौ बाबा बताते हैं कि तरुण भारत संघ की मदद से ही आज हमें अपने व अपने पशुओं के लिए पीने का पानी नसीब हुआ है। हमारे गांव में पहले कोई जलस्रोत नहीं था। अपने पीने तक के लिए मीलों दूर जाकर पानी लाना पड़ता था। पशुओं को भी कई मील दूर जाकर पानी पिलाना पड़ता था। अब तो गांव के पास ही पानी का इंतजाम हो गया है। हमारे गांव में तरुण भारत संघ की मदद से बने जोहड़ में वर्ष भर पानी रहता है। इस जोहड़ को पूरे गांव ने मिलकर बनाया था। इसके लिए चौथाई श्रमदान पूरे परिवार ने मिलकर जुटाया था। इस काम से अब हम बहुत ही स्वाभिमानी व आत्मविश्वासी हो गये हैं। पहले रोज पानी के लिए लड़ाई होती थी। जहां भी अपने पशुओं को लेकर हम जाते थे, वहां के लोग हमें भगा देते थे। अब तो दूसरे गांव के पशु भी गरमी के दिनों में हमारे यहां आकर पानी पीते हैं। जंगलात वालों का डर भी अब समाप्त हो गया है। अब हमारे गांव के लोग ही संगठित रह कर जंगल बचाते हैं। हमें न तो अब पानी का दुख है, न ही खाने का। 20 साल पहले तो जंगलात के लोग हमें घी भी बाहर बेचने नहीं जाने देते थे। टहला दरवज्जे पर ही उसे रखवा लेते थे। अब तो हम शान से अपने जंगल में घूमते हैं, टहलते हैं। अपने जंगल को बचाते

हैं। हमारे जंगल के अंदर अगर कोई शिकारी या गलत आदमी दिख भी जाता है, तो पहले उसे स्वयं पकड़ने की कोशिश करते हैं और यदि वह हमारी पकड़ में नहीं आता है, तो जंगलात विभाग को इस संबंध में सूचना देते हैं। अब तो पूरे साल पानी की मौज रहती है। ऐसा लगता है जैसे गांव के पास से ही गंगा बहने लगी है।

कालाखेत गांव के रामप्रसाद गुर्जर कहते हैं कि हमने पहले अपने खेत के पास के नाले पर एक बांध बनाया था। जिस दिन पहली बार पानी भरा, उस दिन से आज तक हमारे कुएं का पानी कभी खत्म नहीं हुआ। उसी पानी की बदौलत आज हमने इस जंगल में दो-दो पक्के मकान बना लिये हैं।

भगाणी की मुख्यधारा के किनारे बसा कांसला गांव का भौंरा मीणा कहता है कि 15 साल पहले भूखे-प्यासे रहकर तरुण भारत संघ की मदद से हमने एक एनीकट बनाया था। उसकी बदौलत आज हमारे यहां सब तरह की मौज हो गई है। 22 साल पहले तो जंगलात विभाग ने मेरे ऊपर झूठा इल्जाम लगाकर मुझे फंसा दिया था। जंगलात के लोग उस जमाने में हमारी इज्जत, आबरू, पैसा सब कुछ लूटते रहते थे। हमें तो इन जंगलात वालों ने बर्बाद करके रख छोड़ा था। तरुण भारत संघ के इस क्षेत्र में आने के बाद ही हमारी यह बर्बादी रुक सकी और जंगलात वाले भी अब हमें पहले की तरह से परेशान नहीं करते। अब तो हम सुखी और संपन्न हैं।

काण्यास गांव का पांचू गुर्जर बताता है कि 20-25 साल पहले तो तरुण भारत संघ पर हमारा भरोसा जमा ही नहीं था। उस समय मैं राजौरगढ़ पंचायत का सरपंच था। तब इस संस्था का विरोध करने वालों में मैं भी शामिल था। पर अब वो दिन याद आते हैं, तो मन में बहुत पश्चाताप होता है। अगर उस वक्त ये लोग उखड़ गये होते, तो हमारे इलाके के साथ बहुत ही बुरा होता। इन लोगों की मदद से गांव में स्कूल के पास एक बड़ा जोहड़ बना है। इसमें पूरे साल भर पानी रहता

है। इसके पानी से ही गांव का सारा काम होता है। पशुओं के पीने के लिए भी अब पानी की कोई कमी नहीं रही। गांव के सभी कुओं में पूरे साल ऊपर तक पानी रहने लगा है।

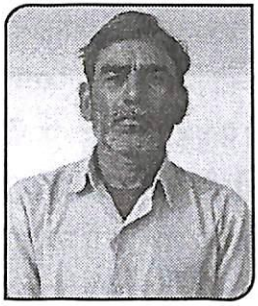

गोवर्धनपुरा के महेश शर्मा का कहना है कि तरुण भारत संघ का यह चमत्कार ही तो है कि भगाणी-तिलदह नदी अब पूरे साल बहने लगी है। हम तो संघ के ऋणी हैं। उसने हमें जीवन दिया है। हम तो भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि अब यह नदी हमेशा इसी तरह बहती रहे। लेकिन खानों के कारण भू-जल स्तर पर भारी गिरावट हो रही है वह सोचनीय है। उल्लेखनीय है कि महेश शर्मा ने खनन आन्दोलन में मल्लाणा के पांचू राम जी सरपंच, छोटे लाल मीणा तिलवाड़ी, गणेश गूजर गोवर्धनपुरा, जनसी, गोपी, जगदीश, श्रवण आदि सैकड़ों लोगों के साथ मिलकर सक्रिय भूमिका निभाई थी।

मल्लाणा के बोदन वैद्य जी की मानें तो पानी ने हमारी जिंदगी बदल दी है। अब तो खेतों में हरियाली है। ऐसा लगता है कि हमारे जीवन में खुशहाली का संसार सिमट गया हो। कारण अब हमें किसी चीज की कमी नहीं रह गई है। गांव में सुख-शान्ति है और यह सब तरुण भारत संघ के प्रयास से ही संभव हो पाया है। बोदन वैद्य जी परम्परागत व आयुर्वेदिक औषधियों के विशेषज्ञ हैं।

तिलवाड़ के मांगीलाल कहते हैं कि पारासर के पास खोह में बने जोहड़ों-बांधों से आज पानी की कोई कमी नहीं रह गई है। हमारे खेतों में देखो गेहूं-सरसों की फसल लहलहा रही है। यह सब तरुण भारत संघ के प्रताप का ही फल है। अगर तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता हमें न समझाते तो हमारी जिंदगी तो तबाह हो गई होती और हम मजदूर ही रह जाते। आज हम यदि खेतों के मालिक हैं तो तरुण भारत संघ की मदद से ही। अब हमें कोई कमी नहीं है और आराम की जिंदगी बिता रहे हैं।

कांकवाड़ी के रामकिशन गुर्जर की मानें तो तरुण भारत संघ के काम से हमें नई जिंदगी मिली है। यह वही कांकवाड़ी है, जहां एक समय आदमी और जानवर में

कोई फर्क नहीं था। इसी कांकवाड़ी में एक किला है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि मुगल बादशाह औरंगजेब ने सत्ता संघर्ष में परास्त अपने भाई दारा शिकोह को यहां पर कैद करके रखा था। इंसानी जिंदगी को रास न आने वाले यहां के हवा-पानी और माहौल से लड़ता हुआ दारा शिकोह यहां तीन साल के भीतर ही मर गया था। 90 के दशक में ऐतिहासिक तथ्य वाला यह किला राजनीति के हाशिये पर पटक दिये गये सरिस्का के लोगों की नियति का एकदम सटीक प्रतीक बन गया था। उस समय किले के ठीक नीचे पहाड़ पर फोड़े-फुंसी की तरह उग आई झोपड़ियों और उनमें रहने वाले इंसानों में मौत की जिंदा शक्ल अपनी समूची भयावहता और नंगेपन के साथ उजागर हो रही थी। ऐसा लगता था कि तब लगभग पचास घरों के करीब पांच सौ लोगों की इस आबादी को गांव कहना तो एकदम बेमानी था।

वह दौर ऐसा था जब खेती की इजाजत तो यहां थी ही नहीं, बल्कि पशुपालन तक पर पूरी तरह प्रतिबंध था। सरकार की तरफ से तो यह सब आज भी है, लेकिन गांव वालों के संगठन के कारण इन कानूनों की धज्जियां उड़ रही हैं। सरकार ने तब इस गांव को बर्बादी के कगार तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अगर एक हैंडपंप का लगना इंतजाम माना जाये, तो इंसानों के लिए अलग से पानी का इंतजाम भी दिसम्बर 1987 में ही यहां पर हो पाया था। इससे पहले यहां जानवर और इंसान एक ही जोहड़ का पानी पीते थे और यह हैंडपंप भी यहां की आबादी की बुनियादी जरूरतों का ख्याल करके नहीं लगाया था, बल्कि तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के संभावित दौरे को ध्यान में रख कर लगाया था। बात दरअसल यह थी कि राजीव गांधी को कांकवाड़ी का किला खास तौर पर पसंद था। प्रधानमंत्री बनने से पूर्व भी वह यहां आते रहे थे। राजीव जी अपनी रियाया के सुख-दुख का खयाल करके कुछ ऐसा-वैसा न पूछ बैठें, इसी के इंतजाम के तहत तब यह एक हैंडपंप यहां गड़वा दिया गया था। अब यह बात दीगर है कि रियाया राजीव गांधी से कुछ सवाल न कर बैठे, उसका इंतजाम भी यहां के हुक्कामों ने राजीव गांधी के सरिस्का दौरे से दो दिन पहले इस गांव के लोगों को खदेड़कर गांव खाली कराकर कर डाला था।

कांकवाड़ी की 42 वर्षीय सूसी बाई तब 22 साल की थी। वह अपने दो बच्चों के साथ जिंदगी की लड़ाई लड़ते-लड़ते तब बदहाल और पस्त हो चली थी। वैसे उस वक्त कांकवाड़ी में 'जिंदगी' का मतलब एकाध वक्त के खाने की जुगाड़ करने भर से ही था। सन् 1984-1985 में सूसी का घरवाला कल्याण गुर्जर खजूर के पेड़ से पत्ते तोड़ कर ले आया था। जंगलात वालों और पुलिस ने उसका चालान कर दिया और उसे जेल में डलवा दिया। उसकी बेहिसाब पिटाई की गई। बेचारा कल्याण इतनी ज्यादतियां नहीं झेल पाया। हिरासत में ही वह चल बसा। सूसी को कल्याण की लाश भी उसकी मौत के पांच दिन बाद ही नसीब हो पाई।

भगाणी जलागम क्षेत्र के अन्तर्गत और सरिस्का के कोर एरिया में स्थित गांव भगाणी, पीलापानी, करांट, किलातला व कांकवाड़ी सरकारी कानून के अंतर्गत खेती नहीं कर सकते। इन लोगों की मुख्य जीविका पशुपालन पर ही आधारित है। अकाल के दौर में तरुण भारत संघ के सहयोग से करांट, पीलापानी के लक्ष्मण, इन्द्रा, माधोराम, जगदीश, बाबूलाल, कल्लू आदि ने मिल कर प्रत्येक परिवार से 1100/- रुपये इकठ्ठा कर मौजनाथ जी वाला बांध बनाया। कांकवाड़ी में भी दो-तीन जोहड़ बनने से पानी रहने लगा। पीलापानी का लक्ष्मण कहता है कि हमारे यहां मौजनाथ जी वाले बांध बनने से पूरे साल पानी रहता है। यहां के मवेशी व जंगली जानवरों को पर्याप्त पानी मिलता है। गर्मियों में बांध में भैंसें पानी में आनन्द लेती हैं। लेकिन यह मौज, आनन्द अब आगे कैसे जारी रहेगा? यह भविष्य के गर्भ में है। यह कथन है पीलापानी के लक्ष्मण का।

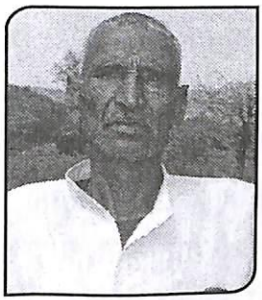

पालपुर, तिलदह धाम के रूपनारायण जोशी का कहना है कि प्रकृति ने हमारे बीच में सरिस्का नाम के बड़े जंगल को छोड़ा है। सरिस्का की पहाड़ियों से उतर कर तिलदह-भगाणी नदी दक्षिण की तरफ बहती है। यहां पर दोनों नदियां आदि काल से बहती रही हैं। परन्तु प्रकृति के प्रकोप से वर्षा कम होने के कारण इनका पानी रुक गया था। परन्तु इस नदी को पुनः जीवित करने के संकल्प के साथ तरुण

भारत संघ के संचालक भाई राजेन्द्र सिंह ने सरिस्का क्षेत्र में पहाड़ के ऊपर बसे हुए गांव मांडलवास व पीलापानी में भोमिया जी वाला बांध व मौजनाथ जी का बांध जैसे बहुत सारे जोहड़-बांधों का निर्माण करवाया। उसके बाद तो और भी बांध-एनीकट बने। एक के बाद एक बने एनीकट ने भगाणी-तिलदह नदी को जीवित किया। हमारे गांव के पास भी तिलदह पर दो एनीकट बने। इस एनीकट ने तिलदह व भगाणी को जोड़ा है। दोनों एनीकट मिल जाने से इस नदी को काफी बेग से बहने का अवसर मिला है।

यहां तरुण भारत संघ द्वारा बनवाये गए एनीकटों-बांधों से नदी के पुनर्जीवित होने में लाभ मिला है। हमारे गांव पालपुर व ककराली रामपुरा को तिलदह एनीकट से बहुत लाभ हुआ है। हमने संस्था को चौथाई हिस्सा दिया। गांव के लोगों को समझाया। तब गांव वाले संस्था के साथ कार्य में लगे। मैं खुद बार-बार तरुण भारत संघ में गया। नदियों के बारे में समझा। जिस प्रकार हमारी सरकार देश की अन्य नदियों पर बेतहाशा पैसा खर्च कर रही है, उसी प्रकार यदि तिलदह-भगाणी पर सरकार ध्यान दे, पैसा खर्च करे, तो इनका प्रवाह तेज हो सकता है। अगर सरकार तरुण भारत संघ की तरह ही जोहड़-बांध-एनीकट का निर्माण करे तो यह निश्चित है कि सरिस्का के जंगल का पानी बहकर नहीं जायेगा और भविष्य के लिए हमारे पास जल के भंडार होंगे। इस विषय पर सरकार को सोचना चाहिए। रूपनारायण जी ने कहा कि मैं तो पानी के काम के लिए ही संस्था से जुड़ा था। मेरा सपना पूरा हो गया।

यह थी भगाणी नदी के कैचमेंट एरिया में पड़ने वाले कुछ गांवों की लौटी हुई खुशियों की दास्तां। नदियां अपने साथ पानी ही नहीं लातीं, हजार-हजार खुशियां भी लाती हैं। वाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग राम-भरत संवाद का है। राम भरत से प्रश्न करते हैं कि तुम्हारे यहां कृषि, नदी-मातृका है या दैव मातृका ? फिर स्वयं ही उत्तर देते हुए कहते हैं, यदि तुम्हारी कृषि, दैव-मातृका है, तो एक न एक दिन तुम जरूर नरक के भागी बनोगे, क्योंकि कभी न कभी अकाल जरूर पड़ेगा। यदि तुम्हारी कृषि, नदी-मातृका है, तो तुम पुण्य के भागी बनोगे। फिर

भरत को आशीर्वाद देते हुए श्री राम कहते हैं कि जब तक इस पृथ्वी पर नदी, पहाड़ तथा जंगल का राज्य रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी।

रामायण का यह प्रसंग कहता है कि प्रकृति कीर्तिदायी हो सकती है, अगर उसको सहेजने का खूबसूरत इतिहास रचा जाये। नदी वह अविरल धारा होती है, जो कीर्ति को सात समंदर पार तक फैला सकती है। पानी हमारी कीर्ति को निर्मलता की कसौटी पर कसे होता है। वर्षों सूखी पड़ी रही भगाणी नदी आज पुनः बहनी शुरू हुई है, उन गांवों की कीर्ति-कथा, जो भगाणी के किनारे-किनारे बसे हुए हैं, इसको साबित कर देती है।

यहां सभी गांव का विवरण देना उचित रहता और अच्छा भी लगता। लेकिन यहां पर हम कुछ ही गांव का विवरण दे पाये हैं। आगे यह प्रयास करेंगे कि भगाणी के जलागम क्षेत्र में आने वाले सभी गांव अपनी कहानी स्वयं लिखें। जल से जीवन, जंगल, पर्यावरण की रक्षा के बारे में सभी को जानकारी मिले, यह जरूरी लगता है। इसलिए सभी गांव जल, जीवन, जंगल, पर्यावरण और गांव की कहानी लिखें ताकि इससे सीख कर दूसरे गांव भी वैसा ही अच्छा काम करने के रास्ते आगे बढ़ें। यही इस पुस्तक का लक्ष्य है।

कहानी विस्थापन की

सच तो यह है कि वन्यजीवों के संरक्षण के लिए बने नये कायदे-कानून से इस अंचल के वनवासियों का जीवन लगातार प्रभावित रहा है। आज़ादी के बाद भी यहां के वनवासियों की गुलामी की जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। यहां तक कि उनका जीवन पशुओं से भी बदतर हो गया। हमारे संविधान में वर्णित जीवन के मौलिक अधिकारों से पूरी तरह वंचित लोग यहां जीवनयापन करते दिखाई दिए। जो रह रहे थे, वह सब भगवान की कृपा पर ही थे। उनका अपना कुछ अस्तित्व ही नहीं था। भगाणी, पीलापानी, करांट, किलामैला व कांकवाड़ी इन गांवों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से ही वंचित रखा गया था। यहां तक बच्चों को शिक्षा और स्वास्थ्य से पूर्णरूपेण वंचित रखना यहां के लोगों की नियति बन गयी थी।

इन गांवों को विस्थापित करने के लिए वन विभाग की प्रताड़नाएं तो थीं, लेकिन उसके लिए किसी योजना, नियम, सुविधाओं का पूरी तरह अभाव था। इसलिए इन गांवों के लोगों का जीवन ऐसे चौराहे पर था कि उन्हें इससे बचने का कोई रास्ता ही नहीं सूझता था और न कोई बताने वाला और न उनकी कोई सुनने वाला ही था। इनकी जिन्दगी पशु पालन पर ही निर्भर थी। फिर भी यहां रहना उन्हें इसलिए रास आ गया था क्योंकि उनके पुरखों ने वहीं जन्म लिया था। वे भी अपने जीवन को वहीं गुजारना चाहते थे। लेकिन वन विभाग उन्हें किसी भी कीमत पर वहां से हटाने पर आमादा था। वे तो हर प्रकार से इसके लिए उन्हें मजबूर कर रहे थे। मजबूर और लाचार व्यक्ति अपने जीवन से कितना निराश हो जाता है? वह तो यहां रहने वाले वनवासियों की आत्मा ही जानती थी। उन्हें अपना जीवन एक बोझ दिखाई देता था। यही हाल इन गांवों का भी था। इनसे अच्छा जीवन तो वन्य जीवों का था जो स्वतंत्र रूप से वन में विचरण करते हैं। इनकी रक्षा, सुरक्षा में अधिकारी, कर्मचारी, वनकर्मी सैकड़ों की तादाद में हर समय मुस्तैद थे।

तरुण भारत संघ के पदाधिकारियों ने वनवासियों के बीच रहकर उनके जीवन को बहुत नजदीक से देखा-समझा, यही नहीं उसे स्वयं जिया भी। उन्हें जो अनुभव हुए, वह मानव जीवन के लिए कष्टकर ही नहीं, बल्कि मानवता की क्रूर हत्या के समान थे। इन अनुभवों से वनवासियों के लिए काम करने की उन्हें प्रेरणा मिली और उनके जीवन को लेकर काम की प्राथमिकताएं तय कीं। वनवासियों को उनके अधिकार दिलाने के लिए तरुण भारत संघ के पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं को लगातार दो वर्ष तक निरंतर संघर्ष करना पड़ा।

वनवासी वन विभाग के अत्याचारों से तंग आ गये थे। वे अपने नारकीय जीवन से छुटकारा तो चाहते थे, लेकिन पहले से विस्थापित करणा का बास के लोगों की तरह नहीं। वे चाहते थे कि कहीं ऐसा न हो उनकी तरह जंगल से निकलने के बाद उन्हें भी दर-दर की ठोकरें खानी पड़ें। उन्हें मालूम था कि सन् 1974-75 में निकाले गये लोगों के पास न घर था, न खेत और न जंगल ही उनके पास बचा था। उन्हें जिन स्थानों पर बसाया गया था, उन पर वहां दबंगों ने कब्जा कर लिया था। इन लोगों ने जिस भूमि पर खेती की, उसी भूमि को पटवारी ने और लोगों के कब्जे की जमीन अपने रिकार्ड में दर्ज दिखा दिया था। इससे भविष्य में भी वह जमीन इनको आवंटन न हो सके। इनकी फसलें भी अक्सर वहां के दबंग काट कर ले जाते थे। अब उनके पास न पशु थे, न कोई और करने को धंधा। इससे यह वनवासी अच्छी तरह समझ गये थे कि हमारे साथ भी कहीं ऐसा ही हाल न हो । जैसा पहले उजाड़े गये लोगों का हुआ है। बस! यही भय हमेशा उन्हें जंगल छोड़ने से रोकता रहा।

तरुण भारत संघ ने सबसे पहले भगाणी क्षेत्र में रहने वाले लोगों को भय मुक्त कर उन्हें जंगल का मालिक होने का अहसास कराया। गांव-गांव में ग्रामसभाओं का गठन कर उनके माध्यम से यहां जल, जंगल, संरक्षण का कार्य किया। इससे वर्षो पहले सूख चुकी भगाणी फिर से सदानीरा हुई। यह यहां के समाज की संगठन शक्ति की बदौलत ही संभव हो सका।

2004 में सरिस्का के बाघ विहीन होने की दुखद घटना के कारण पूरे देश में शोक सा छा गया। विशेषज्ञों द्वारा जो शंका पैदा की गयी थी, उसे सरकार और

प्रशासन ने दरकिनार कर दिया था। सरिस्का में कितने बाघ थे? इसकी सही जानकारी किसी के पास नहीं थी। सभी अधिकारी अपने आंकड़े गढ़ते रहे और बाघ विलुप्त होते रहे। जैसा कि जांचों के बाद स्पष्ट हुआ कि अभयारण्य की कठोर सुरक्षा व्यवस्था के बाद भी सरिस्का का बाघ आंकड़ों का शिकार हो गया।

सरकार की पूर्ण मंशा वनवासियों के विस्थापन करने की थी। इसमें तरुण भारत संघ की भूमिका एक सेतु की तरह रही है। संस्था के पदाधिकारी और कार्यकर्ताओं ने पूर्ण सजगता के साथ भगाणी, करांट, पीलापानी, किलातला व कांकवाड़ी गांव के विस्थापन में सहयोग किया।

सरकार वनवासियों का सरकारी स्तर पर विस्थापन करना तो चाहती थी, लेकिन उसके पास न तो कोई योजना थी और न ही सुझाव। जंगलात विभाग के कर्मचारी जब-जब वनवासियों के विस्थापन की बात करते थे तो तरुण भारत संघ का एक ही सवाल होता था कि वनवासियों का मानव की तरह सुव्यवस्थित रूप से पुनर्वास किया जाए। पूर्व में हुए विस्थापित 'करणा का बास' गांव के लोगों की तरह नहीं। करणा का बास की दुर्गति देख उन्हें जंगल का जीवन ही रास आ रहा था। वह बात दीगर है कि जंगलात विभाग की ज्यादतियों से उनकी आत्मा दुखी थी।

दरअसल इन गांवों में मानवीय सभ्यता के विकास के सभी रास्ते जंगलात विभाग ने बन्द कर दिये थे। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से इन लोगों की दूरी विकासशील देश में कोसों दूर थी। जीवन जीने की आवश्यकता जितनी जीव मात्र को होती है, वह प्रकृति की अनुकम्पा से ही उन्हें मिल रही थी। प्रकृति के प्रकोप के दौर में भी यह लोग जंगल नहीं छोड़ते थे। कारण यहां के समाज और तरुण भारत संघ ने मिलकर जगह-जगह जोहड़, बांध जो बनाए थे, जिसके कारण भगाणी नदी सदानीरा हो गयी थी। भगाणी नदी ही अपने किनारे रहने-बसने वाले लोगों, उनके पशुओं के लिए चारे-पानी का प्रबन्ध करती थी। उसी के जल से तटवासी अपने सूखे गले तर करते थे और पशुओं को पानी पिलाते थे।

रहने के लिए तो जंगल ने पनाह दे ही रखी थी। उनके पास जो भी उपलब्ध था, उससे ये लोग रहने के लिए छोटे-छोटे मिट्टी-पत्थर से दीवार बनाते और जंगल की लकड़ी, घास-फूंस, पेड़ों के पत्ते आदि से उसे ढक झोंपड़ी बनाकर रहते थे। उनका पूरा जीवन पशुपालन पर आधारित था। प्रत्येक भैंस, बकरी के हिसाब से वह जंगलात विभाग को कानूनी-गैर कानूनी रूप से कुछ राशि देते थे। स्कूल, रास्ते, बिजली, पानी की सुविधा सपने में भी उन्होंने नहीं सोची थी। इन हालात में भी जंगलात विभाग के लोगों ने वन्य जीवों की सुरक्षा को लेकर वनवासियों का जीवन नरक बना दिया था।

बाघ परियोजना के कारण गांवों के विस्थापन से सम्बन्धित अलवर के जिलाधीश की अध्यक्षता में गठित कमेटी में तरुण भारत संघ को सदस्य मनोनीत किया गया था। संस्था के सदस्यों ने भगाणी, पीलापानी, करांट, किलामैला, कांकवाड़ी गांवों की विस्थापन प्रक्रिया में अपने सुझावों से समिति को अवगत कराया। संस्था के सदस्यों का मानना था कि पूर्व में विस्थापित किए गए गांव 'करणा का बास' में जो लापरवाही बरती गई, वह दुबारा नहीं दोहराई जाए तथा विस्थापित होने वाले गांववासियों को यह बताया जाय कि सरकारी योजना क्या है? इसका विस्तार से अध्ययन करने व कई वर्ष तक जंगलात विभाग, जिला कलेक्टर व ग्रामवासियों के साथ विचार-विमर्श, संवाद करने के बाद यह तय हुआ कि विस्थापित होने वाले लोगों में 21 वर्ष के युवा को एक परिवार यानी एक परिवार की इकाई माना जाये। इसके लिए खेती के लिए 6 बीघा जमीन व घर मकान के लिए छः सौ वर्ग मीटर जमीन तथा 2.50 लाख रुपये मकान बनाने के लिए, बिजली, पानी, स्कूल आदि की सुविधाएं दी जायें। इन मुद्दों पर भगाणी के लोगों ने अपनी सहमति व्यक्त की थी।

ई.डी.सी. अध्यक्ष ने भगाणी के ग्रामीणों को बताया कि वे विस्थापन हेतु राज्य सरकार द्वारा दिए जा रहे पैकेज से सहमत हैं। सभी ग्रामीणों ने अपनी लिखित सहमति दे दी है। ई.डी.सी. अध्यक्ष कांकवाड़ी का कहना था कि ग्राम कांकवाड़ी के कुछ लोग राज्य सरकार के इसी पैकेज पर सहमत हैं, लेकिन

कुछ लोग अधिक जमीन, अधिक मुआवजा और अधिक सुविधाओं की मांग करते हैं।

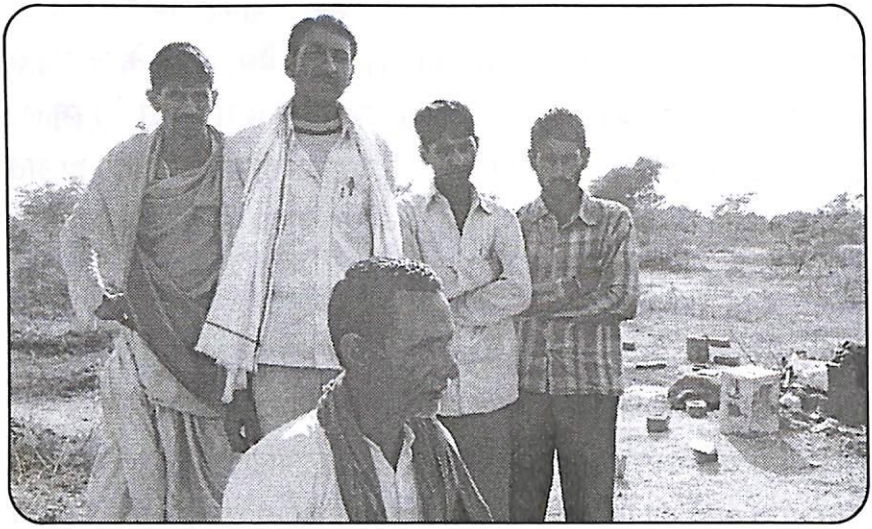

विस्थापन की तैयारी में अपने बिखरे सामान को निहारते लोग

भगाणी गांव के 21 परिवारों के लिए सन् 2007 में 'बर्ड़ोद रून्ध' आरक्षित वन क्षेत्र की सरकारी जमीन को राजस्व में बदलकर काश्तकारी के लिए ठीक किया गया। इस जगह को नया नाम 'देवनगर' दिया गया। यह देवनगर अलवर जिले की बहरोड तहसील से मात्र 6 किलो मीटर दूरी पर बहरोड-अलवर रोड पर स्थित है और जिला मुख्यालय से 55 किलोमीटर दूर है। देवनगर नया गांव है- नई बसावट जिसमें पुराने लोग रह रहे हैं। पुराने लोग वे हैं जो सरिस्का वन्यजीव अभयारण्य में सदियों से रहते आए थे। अब जंगल, जंगली जीवों की सुरक्षा को देखते हुए केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, जंगलात विभाग और प्रशासनिक तंत्र ने मिलकर इन्हें देवनगर में बसाया है।

देवनगर की बसावट का नक्शा नक्शानवीसों के द्वारा तैयार किया गया था जिसमें आबादी की बसावट, आने-जाने के रास्ते, स्कूल और सामुदायिक भवन, बिजली-पानी की सुविधा, खेतों का आवंटन, पुनर्वासियों को रहने के लिए पर्याप्त जगह दी गयी। इसमें लोगों ने अपने रहने के लिए मकान व पशुपालन के बाड़े बनाए हैं। प्रत्येक परिवार को मकान बनाने के लिए 600 वर्ग मीटर जगह है

और 2.5 लाख रुपये मकान बनाने के लिए तथा 6 बीघा जमीन प्रत्येक परिवार को खेती करने के लिए है।

हमारा दर्द न जाने कोई

इसमें सभी ने अपनी-अपनी सुविधानुसार मकान बना भी लिए हैं। पानी की सुविधा के लिए एक हैण्डपम्प और दो पानी की टंकियां और प्रकाश और खेती के लिए बिजली की व्यवस्था, बच्चों के लिए स्कूल है। गांव में आने-जाने के लिए चौड़े रास्ते हैं। रास्ते के दोनों ओर बसावट है। यहां जोहड़ के लिए उपयुक्त जगह है। इसमें आज नरेगा के तहत 1 अप्रैल 2008 से लगातार कार्य चल रहा है। इससे देवनगरवासियों को उनके गांव में ही रोजगार मिल रहा है। अधिकतर परिवार वर्षा के बाद खेतों में सरसों की फसल बोते हैं। फसल की रखवाली महिलाएं करती हैं। वे आज खुश हैं। अब उनके जीवन में भय नहीं है। उनके पास आज अपनी जमीन है, अपने खेत हैं, इनकी रखवाली वे आज स्वयं कर रही हैं।

कांकवाड़ी, किलातैला, करांट, पीलापानी के लोगों की विस्थापन प्रक्रिया में क्षेत्रीय राजनीति आड़े आ रही थी। भगाणी गांव के विस्थापन के बाद संस्था के कार्यकर्ताओं का संवाद सतत जारी रहा। जगदीश गुर्जर ने सरिस्का के सी. सी. एफ. श्री सोमेश्वर के साथ भी विचार-विमर्श जारी रखा। कांकवाड़ी के लोगों को समझाने में उनके रिश्तेदारों को भी मध्यस्थ बनाया। बोदन गुर्जर, गुवाड़ा

कल्याण वाले की दो लड़की कांकवाड़ी में ब्याही थीं। उनको समझाने बोदन कई बार कांकवाड़ी व इनको साथ लेकर देवनगर गये। जगदीश व बोदन गुर्जर ने सरिस्का के अधिकारियों के साथ भी समय-समय पर संवाद बनाये रखा। जो कुछ आपसी समझ में रुकावटें थीं, वे सब बातचीत के द्वारा सामने आयीं और उन पर दुबारा विचार-विमर्श हुआ। जिनके नाम को जोड़ने में खामियाँ रह गई थीं, उन्हें शामिल कर पूरा किया गया। कांकवाड़ी के लेागों को तैयार करने में कई वर्ष लगे। तब जाकर लोग सरिस्का छोड़कर देवनगर जाने को तैयार हुए।

कांकवाड़ी से 9 नवम्बर 2008 को 36 परिवार देवनगर आए और 19 नवम्बर को 68 परिवारों को पुनर्वासित किया गया। उसमें 11 परिवारों को नयी विस्थापन प्रक्रिया के तहत दस-दस लाख रुपये मिलना तय हुआ क्योंकि देवनगर में 114 परिवारों के लिए ही जमीन थी जो आज पूरी बंट चुकी है। इन लोगों को नगद राशि के रूप में मुआवजा मिल रहा है। शेष रहे परिवारों को तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने बैठकें-संवाद करके इनको समझाने का प्रयास किया क्योंकि अब अधिकांश परिवारों ने यहां से विस्थापित होकर बड़ोंद रून्ध, देवनगर में अपना-अपना आशियाना बना लिया है और कुछ अभी बनाने में लगे हुए हैं। अब शेष रहे परिवारों को मौजपुर (लक्ष्मणगढ़) व तिजारा में बसाने की कवायदें चल रही हैं ताकि सरिस्का में बाघ की दहाड़ गूंजती रहे।

अब सवाल यह उठता है कि क्या अब यहां बाघ की दहाड़ वाकई गूंजती रहेगी? कांकवाड़ी व भगाणी गांव को तो देवनगर में विस्थापित कर दिया गया, लेकिन कांकवाड़ी के किले में जो मरम्मत आदि का कार्य जोरों से चल रहा है, उसे देख कर तो यह सम्भव नहीं लगता । इस बारे में यहां के स्थानीय लोगों का कहना है कि यह काम बड़े होटल बनाने की खातिर किया जा रहा है। सोचने वाली बात यह है कि जब यहां होटल बन जायेगा, तब पर्यटकों का कितना दबाव बढ़ेगा? क्या इससे यहां पर वन्य जीव प्रभावित हुए बिना रह सकेंगे? बाहर से आये पर्यटकों से आशा की जा सकती है कि वे वन्यजीवों से प्रेम करेंगे? यहां सदियों से रहते आये वनवासियों को उजाड़कर होटल बनाना कहां तक न्यायोचित है?

देश में प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा-सुरक्षा के लिए कानूनों की पालना करना तो दूर, असल में उन्हें विकास के नाम पर तोड़ा-मरोड़ा जाता है। उदाहरण के तौर पर सरिस्का अभयारण्य के बाहरी क्षेत्र में रियासतकालीन अलवर घराने की एक कोठी थी। उसे दिल्ली के एक व्यवसायी ने खरीद लिया। उसमें फाइव स्टार होटल बनाने की गतिविधियां शुरू की गयीं। होटल मालिक ने कोठी के आसपास की पहाड़ियों पर भी अपना अधिकार जताना शुरू कर दिया। पहले तो इस बाबत जंगलात विभाग व होटल मालिक के बीच आपसी बातचीत चली, लेकिन उनसे जब बात नहीं बनी तो जंगलात के अधिकारी कानून की शरण में गए ताकि अभयारण्य की पहाड़ियों को बचाया जा सके।

यह मामला उच्च न्यायालय में पहुंचा। वन क्षेत्र के कानून व्यवसायी की पकड़ के आगे असहाय नजर आए। नतीजन अब कानूनी रूप से होटल मालिक का अभयारण्य की जमीन पर कब्जा हो गया। इस घटना से लगता है कि विकास के नाम पर आरक्षित वन क्षेत्र पर अतिक्रमण की संभावना बढ़ती जा रही है। सरकार वनवासियों को विस्थापित कर सरिस्का को बचाने का दम्भ भर रही है लेकिन ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों की कैसे रक्षा होगी? यह बड़ा प्रश्न हम सबके सामने है। एक तरफ सरिस्का के अधिकारी, प्रशासन और सरकार वन्य जीवों के लिए अभयारण्य में सदियों से बसे गांवों को समस्या मानते हैं, तो दूसरी तरफ विकास के नाम पर सरिस्का अभयारण्य की सीमा में व्यापारिक गतिविधियां चलाकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं? ऐसी परिस्थिति में प्रकृति का विनाश ही संभव है। विकास का दानव गरीब को तो हर प्रकार से खत्म करके ही रहेगा। चाहे वह जंगल के बाहर हो या जंगल के भीतर। विकास के नुमाइंदों के हाथ इस समय बहुत लम्बे हैं। उनके आगे कानून और सरकार के हाथ बौने पड़ गये दिखाई देते हैं।

भूजल नियंत्रण से ही बही भगाणी-तिलदह

नदियों को जीवित करने के लिए भूजल का नियंत्रण और भूजल का पुनर्भरण जरूरी है। समाज ने भूजल नियंत्रण हेतु सभी नदियों पर अपने ज्यादातर भूजल नियंत्रण के दस्तूर और नियम-कायदे-कानून बनाने के लिए समाज को तैयार किया। समाज ने एक तरफ वर्षा जल को सहेजने का काम किया और इसी तरह भूजल का नियंत्रण भी किया। तभी तो तभासं जैसा छोटा सा संगठन राजस्थान जैसे कम वर्षा वाले क्षेत्र में 7 नदियों को पुनर्जीवित कर सका।

तरुण भारत संघ ने भूजल नियंत्रण हेतु खनन उद्योग के खिलाफ उच्चतम् न्यायालय में जनहित याचिका दायर करके एक तरफ सरिस्का के जंगल की भूमि पर अतिक्रमण को हटाने का काम किया, वहीं दूसरी तरफ खनन उद्योग हेतु भूजल उलीचने के काम को रुकवाया जिससे तरुण भारत संघ के कामों से हुए भूजल पुनर्भरण के स्थायी समाधान के लिए धरती के पेट में पानी बचाके रखा जा सके। जब धरती का पेट पानी से भर जाता है तो अधोभूजल धरती के ऊपर आकर बहने लगता है। इसी से नदियां बनती हैं। तरुण भारत संघ ने ऐसा करके भगाणी-तिलदह नदी को शुद्ध सदानीरा बनाकर बहा दिया।

गौरतलब है कि पूर्ववर्ती भाजपा सरकार ने अपने राष्ट्रीय एजेन्डा में राष्ट्रीय जल नीति बनाने का वायदा किया था। जल नीति के लिए भूमिगत जल का गिरता स्तर एक अहम मुद्दा है। आज बोरिंग के माध्यम से पृथ्वी का निरंतर दोहन हो रहा है। जितना जल वर्षा से पृथ्वी में समाता है, उससे अधिक हम निकाल रहे हैं। कई स्थानों पर तो एक वर्ष में 1-2 मीटर तक जल स्तर गिर रहा है। धरती माता के इस अति दोहन को तत्काल रोकना बेहद जरूरी है।

पूर्ववर्ती राजस्थान सरकार ने भूमिगत जल के नियंत्रण के लिए कानून का एक प्रारूप तैयार किया था। लम्बे समय तक यह बिल राज्य कैबिनेट के विचाराधीन

रहा। यूं तो यह बिल राजस्थान के लिए बनाया गया था परंतु इससे जो मुद्दे उठकर सामने आए, वे पूरे देश के लिए महत्वपूर्ण रहे। इस बिल में नए बोरिंग खोदने के लिए लाइसेंस का प्रावधान था।

इस बिल में जिला कलेक्टर से किसानों को लाइसेंस लेने की बाध्यता थी। कलेक्टर को यह अधिकार भी दिया गया कि जहां पीने के पानी की किल्लत हो, वहां वर्तमान में चालू बोरिंग को भी बंद किया जा सकता है। सरकार की नीयत चाहे अच्छी हो परंतु नियंत्रण का यह तरीका ठीक नहीं रहा। इसमें कई खामियां रहीं। पहली खामी यह थी कि इस तरह जलस्तर का गिराव नहीं रुकना था, सो नहीं ही रुका। नए बोरिंग के लाइसेंस जारी करना बंद कर दिए जाते, तो भी बोरिंग के माध्यम से पानी का दोहन बेरोकटोक जारी रहता। जो बोरिंग 100 मीटर गहरा होता, उसे फिर 150 मीटर और गहरा कर नीचे का पानी निकाला जाता। सरकार लाइसेंस पद्धति से केवल नए बोरिंग ही लगाना रोक सकती थी।

बोरिंगों द्वारा अतिदोहन पर जब तक नियंत्रण नहीं किया जाता, तब तक तो जलस्तर गिरता ही रहता। उस दशा में आगे केवल पीने के पानी के लिए सार्वजनिक बोरिंग किसान के बोरिंग से अधिक गहरे खोदे जाते। अतः उनमें जल की कमी असाधारण परिस्थितियों में ही होगी। अतः नए लाइसेंस जारी करने से वर्तमान में हो रहे अतिदोहन पर नियंत्रण नहीं होगा और यह भी कटु सत्य है कि जलस्तर का गिराव भी निरंतर जारी रहेगा।

लाइसेंस पद्धति की दूसरी खामी यह रही कि इसने भ्रष्टाचार का एक नया रास्ता खोल दिया। असल में कलेक्टर स्वयं तो हर आवेदन को देख नहीं सकता। पटवारी इत्यादि बोरिंग लाइसेंस दिलाने के लिए अच्छा खासा कमीशन मांगेंगे। नए बोरिंग की बात तो अलग वर्तमान में चल रहे बोरिंग को ही बंद कराने की धमकी देकर निरीह किसानों से भी अच्छी खासी रकम वसूल की जा सकती है। देखा जाये तो वैसे ही देश का किसान सरकारी तंत्र से परेशान है। फिर बिजली, ट्रैक्टर लाइसेंस, बैंक लोन आदि सबके लिए उसे घूस भी देनी ही पड़ती है। अब

बोरिंग भी इस सूची में जुड़ गया। ऐसी हालत में सरकारी तंत्र द्वारा किसान के शोषण का यह एक नया नुस्खा बन गया।

इसकी तीसरी खामी यह है कि ये गरीब विरोधी हैं। गांव के बड़े किसानों के पास पहले से ही अधिक जमीन है। वे तो एक नहीं बल्कि दो-तीन बोरिंग पहले ही लगा चुके हैं। आजादी के छह दशक के बाद धीरे-धीरे छोटे किसान भी सर उठा रहे हैं। कई छोटे किसानों के भाई-भतीजे बाहर नौकरी कर रहे हैं और वे घर पैसा भेजते हैं। इस पैसे के बलबूते गरीब किसान धीरे-धीरे बोरिंग लगाने की हैसियत में आ रहे हैं।

वर्तमान में बड़े किसानों के पास बोरिंग अधिक हैं और गरीब के पास कम। जब नए बोरिंग के लिए लाइसेंस लागू किया जाएगा तो इससे छोटा किसान ही मरेगा। बड़ा किसान तो दो-तीन बोरिंग पहले ही लगा चुका है। उसे लाइसेंस की जरूरत भी नहीं है। छोटे किसान को बोरिंग से वंचित कर दिया जाएगा। पहले उसके पास पैसा नहीं था कि वह बोरिंग लगवा सके, अब उसके पास लाइसेंस नहीं है। इस तरह सदियों से चले आ रहे बड़े किसानों का वर्चस्व तो बना ही रहेगा। जल स्तर संरक्षण के नाम पर छोटे किसान का सर काटा जाएगा जबकि बड़े किसान को पूर्ववत् अतिदोहन करने की छूट जारी रहेगी।

फिर भी जल स्तर की गिरावट को तो रोकना ही है। जरूरत है कि सरकार लाइसेंस पद्धति लागू न करे। इसके स्थान पर हर ब्लॉक में बोरिंग की अधिकतम गहराई घोषित कर दी जाये। जिन किसानों की बोरिंग इससे गहरी हो, उन्हें एक निश्चित मियाद के अंदर उतनी गहराई को पाटना होगा। इससे उपरोक्त तीनों समस्याओं का समाधान हो जाएगा। जलस्तर की गिरावट तत्काल रुक जाएगी। जब 100 मीटर से अधिक बोरिंग जाएगी ही नहीं तो जलस्तर 100 मीटर से नीचे कैसे जाएगा ?

इससे भ्रष्टाचार से भी किसान बच जाएगा। हर किसान को छूट होगी कि दो नहीं वह चार बोरिंग लगाए। पर बोरिंग वही 100 मीटर। एक गांव में 100 मीटर की

गहराई पर वर्तमान में 20 बोरिंग हैं। मान लीजिए ये औसतन 16 घंटे में सूख जाते हैं। 20 बोरिंग और लग गए। अब वही पानी इन 40 बोरिंगों से 8 घंटे में खींच लिया जाएगा। बिना सरकारी तंत्र के हस्तक्षेप के प्रकृति जल का बंटवारा कर देगी और जल स्तर भी नियंत्रित हो जाएगा। किसान को सरकारी तंत्र तब ही परेशान कर सकेगा, जब वह घोषित से अधिक गहराई की बोरिंग करेगा।

इससे गरीब भी नहीं मारा जाएगा। यदि वर्तमान में बड़े किसान ने तीन बोरिंग लगा रखे हैं तो आगे छोटा किसान तीन नहीं छह बोरिंग लगा सकता है। पूर्व की असमानता को वह तोड़ सकता है। वर्तमान में बड़े किसान द्वारा उपयोग किए जा रहे जल में वह अपना हिस्सा ले सकता है।

एक और लाभ होगा इस नियंत्रण प्रणाली का। पीने के पानी के बोरिंग को ज्यादा गहराई तक जाने की अनुमति दी जा सकती है। यदि सिंचाई की बोरिंग 100 मीटर है तो पीने के पानी की 200 मीटर गहरी खोदी जा सकती है। इससे लाभ यह होगा कि पीने के पानी की कमी होने की संभावना कम होगी। यदि सूखा पड़

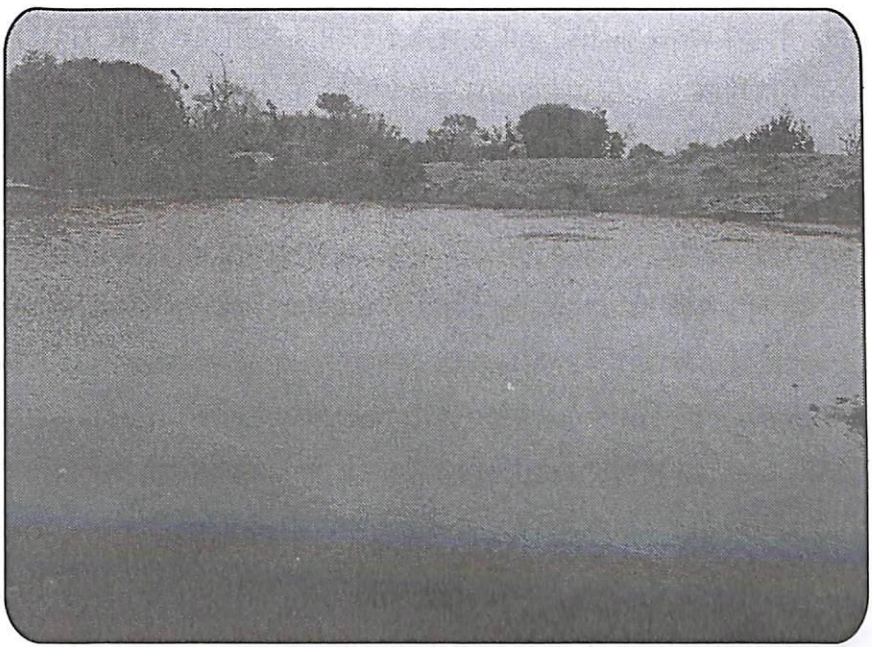

भगाणी-तिलदह नदी जलागम क्षेत्र में तरुण भारत संघ द्वारा जन-सहभागिता से निर्मित जल-संरक्षण संरचनाएं वर्ष 1985 से मार्च 2009 तक

क्र.	जोहड़/बाँध का नाम	गाँव	उत्तरी अक्षांश N			पूर्वी देशान्तर E		
			डिग्री	मिनट	सैकण्ड	डिग्री	मिनट	सैकण्ड
1	मौजनाथ जी वाला बाँध	पीलापानी	27	19	30.540	76	22	40.368
2	सूरसिद्ध का जोहड़	कांकवाड़ी	27	20	09.708	76	21	46.692
3	देवाँळी जोहड़ी	कांकवाड़ी	27	19	24.708	76	21	41.580
4	खान्याळी का बाँध	खान्याळी	27	18	48.492	76	21	49.392
5	स्कूल पीछे वाला जोहड़	काँण्यास	27	19	03.828	76	21	24.120
6	मटिया तळा की जोहड़ी	कालाखेत	27	19	01.200	76	20	44.808
7	काळा खेताँ का बाँध(छलार वाला बाँध)	कालाखेत	27	18	46.908	76	21	03.132
8	खाना वाला जोहड़	कालाखेत	27	18	46.368	76	20	52.800
9	बेरा का एनीकट	मथुरावट	27	18	31.320	76	20	42.288
10	सूरसिद्ध का जोहड़	मथुरावट	27	18	23.868	76	20	44.412
11	जोबनेर माता का जोहड़	मथुरावट	27	18	20.988	76	20	43.440
12	मान्याळा का जोहड़(बंगस का नाळा पीछे का जोहड़)	मान्याळा	27	18	19.152	76	21	12.708
13	नकट नळा का जोहड़	मथुरावट	27	18	11.268	76	20	32.172
14	बळाइयों वाली जोहड़ी	मथुरावट	27	18	04.752	76	20	36.960
15	राज्याळा बाँध	काँसला	27	17	41.208	76	21	02.232
16	बाळकनाथ जी का एनीकट	काँसला	27	17	33.684	76	21	27.576
17	भौंरा काँसला का बाँध	काँसला	27	17	32.528	76	20	44.988
18	बूच्याळा का जोहड़	काँसला	27	17	32.352	76	20	45.528
19	स्कूल पीछे वाला जोहड़	राजौर	27	17	34.512	76	20	10.428
20	कुबाण्या का बाँध	राजौर	27	17	07.080	76	19	59.232
21	बळदाँ वाळी जोहड़ी	राजौर	27	17	07.080	76	20	39.372

क्र.	जोहड़/बाँध का नाम	गाँव	उत्तरी अक्षांश N			पूर्वी देशान्तर E		
			डिग्री	मिनट	सैकण्ड	डिग्री	मिनट	सैकण्ड
22	बड़ का नळा का बाँध (बड़वाला बाँध)	मांडलवास	27	16	53.148	76	20	39.948
23	शीशम वाला बाँध	मांडलवास	27	16	48.360	76	20	30.192
24	गोदाम के पास वाला जोहड़	मांडलवास	27	16	44.220	76	20	05.710
25	भोमिया जी वाला बाँध	मांडलवास	27	16	41.270	76	19	59.590
26	झाँकड़्या वाला बाँध	मांडलवास	27	16	36.300	76	20	31.092
27	बिरदू की मेड़बन्दी-1	मांडलवास	27	16	32.088	76	20	24.072
28	बिरदू की मेड़बन्दी-2	मांडलवास	27	16	31.152	76	20	24.792
29	तिबारी वालों की जोहड़ी	मांडलवास	27	16	25.390	76	20	09.890
30	भागल्या की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	22.368	76	20	26.412
31	राम दयाल की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	21.108	76	20	27.420
32	रामदयाल की मेडबन्दी	मांडलवास	27	16	21.252	76	20	24.252
33	रामपाल की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	20.172	76	20	24.288
34	बावड़ी वाळा की मेड़बन्दी-रामदयाल की	मांडलवास	27	16	21.288	76	20	20.832
35	नवा कुआं का बाँध-बिरदू का	मांडलवास	27	16	15.708	76	20	16.908
36	बोदू की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	09.732	76	20	16.512
37	किस्सू वाळा बाँध	मांडलवास	27	16	08.472	76	20	17.988
38	भगवाना की धौळी राड़ी की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	05.052	76	20	22.020
39	भगवाना की बड़ी की मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	04.188	76	20	23.640
40	पढ़्या की मेड़बन्दी-1	मांडलवास	27	16	03.360	76	20	27.888
41	पढ़्या की मेड़बन्दी-2	मांडलवास	27	16	02.028	76	20	29.112
42	पढ़्या की मेडबन्दी-3	मांडलवास	27	16	00.840	76	20	26.160
43	सरस वाला बाँध-पढ़्या का	मांडलवास	27	16	00.372	76	20	26.160
44	काळू राम की (धौळी राड़ी की) मेड़बन्दी	मांडलवास	27	16	01.560	76	20	21.300
45	धाणका वाला बाँध	मांडलवास	27	16	01.308	76	20	15.900
46	एकलिया धोक वाळा बाँध-हनुमान का	मांडलवास	27	15	52.200	76	20	18.960
47	जीवण्या धोक का (ढाबा वाला) जोहड़	मांडलवास	27	15	46.152	76	20	21.768

क्र.	जोहड़/बाँध का नाम	गाँव	उत्तरी अक्षांश N			पूर्वी देशान्तर E		
			डिग्री	मिनट	सैकण्ड	डिग्री	मिनट	सैकण्ड
48	गाँडराळी जोहड़ी	मांडलवास	27	15	45.000	76	19	55.000
49	कूँडळा वालों का बाँध(फूलचन्द का बाँध)	गढ़	27	15	34.200	76	20	25.332
50	राम दयाल का बाँध-1	गढ़	27	15	09.072	76	20	34.260
51	राम दयाल का बाँध-2	गढ़	27	15	04.248	76	20	33.432
52	छीला वाळी जोहड़ी	गढ़	27	15	04.572	76	20	36.060
53	राम दयाल का रोड़ के पास बाँध-3	गढ़	27	15	02.880	76	20	31.452
54	जगदीश शर्मा की मेड़बन्दी	गढ़	27	14	58.308	76	20	49.380
55	कैलाश नाथ जी की मेड़बन्दी-1	गढ़	27	14	46.860	76	21	01.332
56	कैलाश नाथ जी की मेड़बन्दी-2	गढ़	27	14	46.788	76	20	58.380
57	सन्नाटा वाला जोहड़	गढ़	27	14	47.832	76	20	49.632
58	जगदीश शर्मा की मेड़बन्दी (बटुक देवरी के पीछे)	गढ़	27	14	46.428	76	20	40.020
59	चौधराणा का जोहड़ (बाग के पास)	गढ़	27	14	42.720	76	20	34.908
60	बनवारी सैन की मेड़बन्दी-1	गढ़	27	14	46.680	76	20	49.488
61	बनवारी सैन की मेड़बन्दी-2	गढ़	27	14	42.470	76	20	53.770
62	बन्हाँ वाला जोहड़ -पहाड़ पर	गढ़	27	14	21.552	76	20	27.060
63	मेदा राम की मेड़बन्दी	गढ़	27	14	26.160	76	21	09.000
64	रामदयाल का बाँध	गढ़	27	14	12.228	76	21	05.868
65	जगन की मेड़बन्दी	गढ़	27	14	08.160	76	21	05.148
66	कोट वाला बाँध	गढ़	27	13	41.628	76	21	00.648
67	बळाइयों वाली जोहड़ी	गढ़	27	12	41.040	76	20	48.768
68	काश वाला जोहड़	दबकन	27	15	18.470	76	21	43.380
69	पक्की पाल का जोहड़	दबकन	27	15	28.188	76	21	51.012
70	काळा पापड़ा वाला जोहड़	दबकन	27	15	16.488	76	21	56.700
71	कुटिया वाला जोहड़	सिटावट	27	14	13.850	76	23	20.690
72	घोरी वाला जोहड़-राम स्वरूप का	तिलवाड़ी	27	13	47.390	76	22	33.530

क्र.	जोहड़/बाँध का नाम	गाँव	उत्तरी अक्षांश N			पूर्वी देशान्तर E		
			डिग्री	मिनट	सैकण्ड	डिग्री	मिनट	सैकण्ड
73	मलहट वाला जोहड़-रमशी का	तिलवाड़ी	27	13	20.750	76	22	24.710
74	छोटे लाल वाला जोहड़	तिलवाड़ी	27	13	10.740	76	22	47.460
75	राम कँवार का जोहड़	तिलवाड़ी	27	12	55.510	76	22	40.550
76	काळी राड़ी का जोहड़	तिलवाड़ी	27	12	49.070	76	22	49.440
77	तिलवाड़ी का जोहड़	तिलवाड़ी	27	12	43.810	76	23	55.680
78	खान्याळा वाला जोहड़	तिलवाड़	27	12	40.930	76	23	43.000
79	कोलियों वाला जोहड़-स्कूल के सामने	तिलवाड़	27	12	47.770	76	24	12.530
80	दीपल्याळी का जोहड़	सक्काळा	27	12	33.048	76	21	44.280
81	जोग्याळी का जोहड़-शिव सागर	सक्काळा	27	12	28.152	76	21	37.872
82	श्योदान की मेड़बन्दी	सक्काळा	27	12	28.908	76	21	46.692
83	जयराम की मेड़बन्दी-1	सक्काळा	27	12	25.848	76	21	48.312
84	जयराम की मेड़बन्दी-2	सक्काळा	27	12	24.228	76	21	44.820
85	बाबा सागर	सक्काळा	27	12	18.180	76	21	47.808
86	छोटी जोहड़ी-वीर सागर	सक्काळा	27	12	11.808	76	21	59.148
87	गौर वाली जोहड़ी	ऊपला गुवाड़ा	27	11	40.848	76	21	57.960
88	बड़ी वाला जोहड़- पाराशर जी के रास्ते में	गड़हट	27	10	52.608	76	21	39.420
89	शम्भू कुमावत का एनीकट	गड़हट	27	10	28.488	76	21	42.012
90	गूगा बंजारा की मेड़बन्दी-1	गड़हट	27	10	04.332	76	21	13.608
91	गूगा बंजारा की मेड़बन्दी-2	गड़हट	27	10	02.640	76	21	14.940
92	गूगा बंजारा की मेड़बन्दी-3	गड़हट	27	10	00.120	76	21	15.552
93	गूगा बंजारा का बाँध	गड़हट	27	10	01.452	76	21	19.548
94	हनुमान जी वाला जोहड़	गड़हट	27	10	02.208	76	21	26.352
95	सुनारों की बावड़ी	खोह	27	10	40.908	76	22	18.660
96	स्टैण्ड वाला-गौर वाला जोहड़	खोह	27	10	46.632	76	22	39.000
97	जगदीश सेठ का एनीकट-खान में	पालपुर	27	11	44.592	76	23	20.292
98	पालपुर की जोहड़ी-नई जोहड़ी	पालपुर	27	11	59.928	76	23	41.568

क्र.	जोहड़/बाँध का नाम	गाँव	उत्तरी अक्षांश N			पूर्वी देशान्तर E		
			डिग्री	मिनट	सैकण्ड	डिग्री	मिनट	सैकण्ड
99	जगदीश सरपंच का एनीकट	पालपुर	27	11	20.832	76	23	51.288
100	तिलदह का ऊपर वाला एनीकट	कक्कराळी	27	11	23.892	76	24	53.280
101	तिलदह का नीचे वाला एनीकट	कक्कराळी	27	11	17.772	76	24	51.732
102	लालोळाई का जोहड़	गोवर्द्धनपुरा	27	11	50.748	76	26	52.728
103	राम प्रसाद का एनीकट	गोवर्द्धनपुरा	27	11	39.804	76	26	36.960
104	गोदूयाळी जोहड़ी	रामपुरा	27	11	19.140	76	26	04.128
105	मोटाळी जोहड़ी	रामपुरा	27	11	09.780	76	25	56.028
106	छींडी वाला बाँध	रामपुरा	27	10	56.892	76	26	32.100
107	रूपनारायण जी की मेड़बन्दी-1	रामपुरा	27	10	39.180	76	25	48.072
108	रूपनारायण जी की मेड़बन्दी-2	रामपुरा	27	10	39.612	76	25	45.120
109	दाँता वाला एनीकट-सीताराम तिवाड़ी का	रामपुरा	27	10	47.028	76	25	10.020
110	बिरदू कोळी का एनीकट	रामपुरा	27	10	35.400	76	25	24.708
111	बो की जोहड़ी- गूजरों की जोहड़ी	रामपुरा	27	10	25.212	76	25	40.368
112	बेरली का जोहड़	बेरली	27	10	03.108	76	25	13.728
113	श्रवण बड़ाला का एनीकट	जयसिंहपुरा	27	9	49.248	76	24	41.688
114	किशन का ऐनीकट	जयसिंहपुरा	27	9	41.112	76	24	56.772
115	धोळी भाट का जोहड़ (छींडी का मुहँडा आगे)	जयसिंहपुरा	27	9	41.940	76	25	34.572
116	श्रवण घेसला का एनीकट	जयसिंहपुरा	27	9	14.472	76	25	06.132
117	भौंराज का जोहड़	जयसिंहपुरा	27	9	07.992	76	25	31.260
118	भैंरू जी का जोहड़	बुधपुरा	27	8	51.180	76	23	45.492
119	सेदू का एनीकट-होळी वाला में	आसपा	27	8	41.352	76	24	09.972
120	घाटड़ा का जोहड़	घाटड़ा	27	8	13.200	76	24	02.520

भगाणी–तिलदह नदी जलागम क्षेत्र

जल संरक्षण संरचनाएं

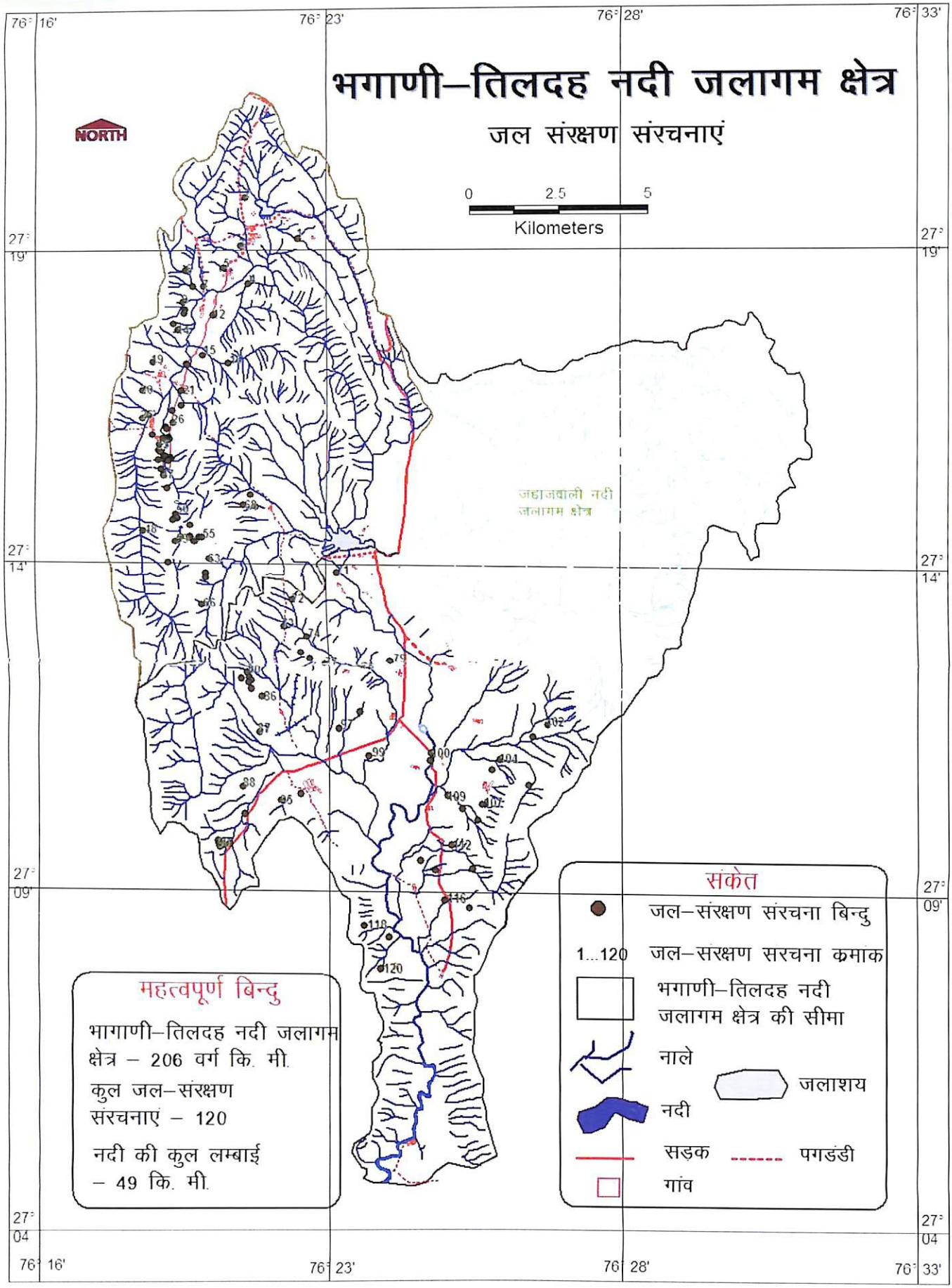

महत्वपूर्ण बिन्दु

भागाणी–तिलदह नदी जलागम क्षेत्र – 206 वर्ग कि. मी.

कुल जल–संरक्षण संरचनाएं – 120

नदी की कुल लम्बाई – 49 कि. मी.

संकेत

- जल–संरक्षण संरचना बिन्दु
- 1...120 जल–संरक्षण सरचना कमांक
- भगाणी–तिलदह नदी जलागम क्षेत्र की सीमा
- नाले
- जलाशय
- नदी
- सड़क
- पगडंडी
- गांव

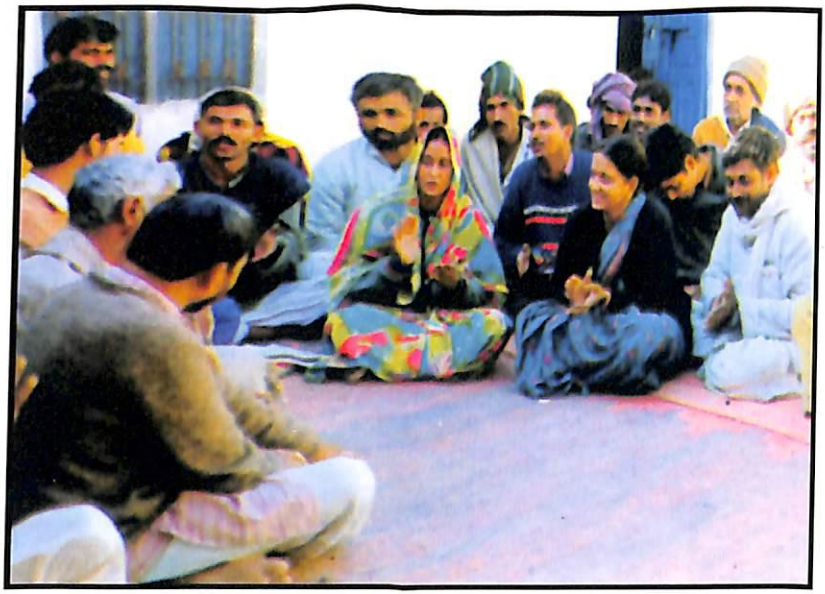

खनन के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर हर्ष व्यक्त करते तरुण भारत संघ कार्यकर्ता

अरावली बचाओ पदयात्रा करते तभासं कार्यकर्ता एवं क्षेत्रीय ग्रामीण जन।

तरुण भारत संघ
भीकमपुरा, किशोरी, वाया थानागाजी
जिला : अलवर-301022, राजस्थान
दूरभाष : 01465-225043